

शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 6 अंक : 9 1 अप्रैल 2014

(चैत्र-वैशाख, विक्रम संवत् 2071)

संरक्षक

मुकुन्द कुलकर्णी

प्रो.के.नरहरि



परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल



सम्पादक

प्रो. सन्तोष पाण्डेय



सम्पादक मण्डल

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

भरत शर्मा



प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर



व्यवस्थापक

बजरंग प्रसाद मजेजी



प्रेषण प्रभारी

बसन्त जिन्दल 9414716585

प्रकाशकीय कार्यालय:

82, पटेल कॉलोनी, सदा पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001

दूरभाष: 9414040403,9782873467

दिल्ली ब्यूरो कार्यालय

शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष: 011-22914799

E-mail:

shaikshikmanthan@gmail.com

Visit us at :

www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 15/-

वार्षिक शुल्क 150/-

आजीवन (दस वर्ष) 1200/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक

में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल
का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शिक्षा का स्वरूप क्या हो ? – गोकुल चन्द गोयल



बालकों की आयु, स्वास्थ्य, मानसिक व शारीरिक स्तर के अनुकूल, स्वालम्बन, श्रम, शिविर आदि का विद्यालय में अभ्यास अवश्य कराया जावे जिससे वे जीवन में आत्मविश्वासी, श्रमशील व साहसी बन सकें और थोड़ी कठिनाई पर ही परेशान व निराश न हो तथा उनमें परिस्थिति के अनुसार निर्णय व कार्य की क्षमता उत्पन्न हो। आत्मविश्वास जीवन में सफलता की श्रेष्ठ कुञ्जी होता है।

22

अनुक्रम

4. समतावादी समाज की प्रगति का आधार
 6. वैश्विक है, शिक्षा में असमानता
 8. क्या सामाजिक बराबरी को प्रोत्साहन देती है...
 10. राष्ट्र हित में आवश्यक, समताकारी समाज
 12. समता के शिल्पकार : डॉ.भीमराव अम्बेडकर
 15. सामाजिक क्रान्ति के पुरोधा महात्मा फूले
 18. निचले पायदान पर लटकी उच्च शिक्षा
 20. शोध प्रबन्धों का गिरता स्तर
 26. विलगाव और विलोपन
 28. विज्ञान की कौशलविहीन शिक्षा
 30. उदास किताबें
 32. जागरुकता के बावजूद
 36. पढ़ाई तब और अब
 38. Child more Important than Syllabus
 40. PC squeezes poor to balance books
 41. गतिविधि
- सन्तोष पाण्डेय
- विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
- बजरंगी सिंह
- बजरंग प्रसाद मजेजी
- विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
- प्रो. सीताराम व्यास
- डॉ. विशेष गुप्ता
- डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
- सदानंद शाही
- आशुतोष उपाध्याय
- पुष्पपाल सिंह
- सय्यद मुबीन ज़ेहरा
- कमल कौशिक
- Iqbal Dhaliwal
- Subodh Varma

Indians No. 2 users of MIT-Harvard e-courses

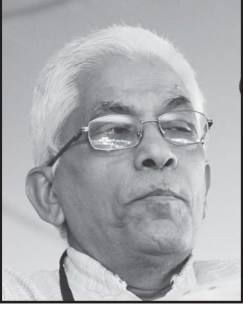
□ Sujit John

Indians the second largest community, after Americans, to register for these courses, said edX president Anant Agarwal, an Indian American who grew up in Mangalore and who has been teaching the circuits & electronics course in MIT for 26 years. The courses have been put together and are led by some of the finest professors in the world. Students require just an internet connection. The courses are free, can be normally completed within a duration of 4 weeks to 12 weeks, and those who complete them receive a certificate from the university that provides the course.



34

समतावादी समाज की प्रगति का आधार



□ सन्तोष पाण्डेय

आदर्श रूप में शिक्षा स्वायत्त व आत्मनिर्भर होनी चाहिये, जिससे समाज की सोच आकांक्षाओं के अनुरूप इसे ढाला जा सके। सरकारी नियंत्रण व वित्तपोषण वाली शिक्षा निर्देशात्मक बन जाती है राजकीय व्यवस्था की सारी कमजोरियाँ उसमें समाहित हो जाती हैं। भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा स्वायत्त रही। पन्द्रह शताब्दियों के विदेशी शासन विशेष कर अंग्रेजी शासन व्यवस्था में शिक्षा पूर्णतः राज्याश्रित हो गयी। वह परंपरा आज भी जारी है। फलतः भारत के विशाल प्राचीन ज्ञानसागर से न तो समाज परिचित हो पा रहा है, न उसका व्यावहारिक लाभ प्राप्त हो पा रहा है।

16वीं लोकसभा के गठन हेतु देश में निर्वाचन की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। देश में ज्वलंत समस्याओं व चुनौतियों पर मंथन हो रहा है। यह निर्वाचन युगांतरकारी व नई दिशा में ले जाने वाला हो सकता है। गत दो दशकों में हुये आर्थिक व सामाजिक परिवर्तनों से समाज की सोच में व्यापक परिवर्तन हुआ है। देश एक बार विश्व की बड़ी शक्ति बनने व उभरती आर्थिक शक्ति की बानगी देख चुका है। गत एक दशक में आयी व्यापक आर्थिक गिरावट, सुरसा की तरह बढ़ती मंहगाई व सर्वव्यापक भ्रष्टाचार के प्रसार से देश चिन्तित है। आज देश की प्रबल आकांक्षा भ्रष्टाचार से मुक्त, आर्थिक प्रगति, विकास, रोजगारपरक शिक्षा व्यवस्था करने वाली सरकार को चुनने की है। एक सुदृढ़ राष्ट्र, कानून की सर्वोच्चता, कृषि, व्यवसाय व उद्योगों में विश्वास उत्पन्न करने वाली मजबूत दूरदर्शी व व्यापक हित वाली नीतियाँ अपनाने वाली सरकार की संकल्पना जनमानस में विद्यमान है। देश में चल रहे मंथन में समाज जातिवादी व्यवस्था, क्षेत्रीयता, वर्ग, धर्मनिरपेक्षता बनाम साम्प्रदायिकता, राजनीतिक वंशवाद से ऊपर उठकर एक मजबूत, विजनरी, स्थयित्व देने वाला नेतृत्व चाहता है। यद्यपि राजनीतिक दलों का अभी भी प्रयास यही है कि पूर्व के मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित कर लोक लुभावन की घोषणाओं का चित्र प्रस्तुत कर यथा स्थिति वाली सरकार के प्रति समाज को आकर्षित किया जाय। देश में पूर्वापेक्षा अधिक शिक्षित समाज ने मजबूत देश व स्थायित्व देने वाली सरकार के महत्व को समझा है, जिससे वे आसानी से राजनीतिक दलों की मंशा को पूर्ण नहीं होने देंगे। इसे फलीभूत करने में अनेक बाधाएँ भी हैं। असमानता एक बहुत बड़ी चुनौती है। आज भी समाज गरीबी, बेरोजगारी, दलित, कमजोर व वंचित वर्ग के आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पिछड़ेपन से ग्रसित है। जाति व्यवस्था जकड़न क्षेत्रीय समानताओं के साथ-साथ शिक्षा (वह भी गुणवत्तारहित) की बहुत ही सीमित सुविधाएँ, लैंगिक असमानता समतावादी समाज की स्थापना में बाधक है। कैसा भी सक्षम राष्ट्रीय नेतृत्व क्यों न उभरे, उसे

इन बाधाओं से मजबूती से निपटना होगा।

देश में स्थायी प्रगति व उन्नति के लिये आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक समानता अति आवश्यक है। समतावादी समाज ही शोषण से मुक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले, परिपक्व समाज की रचना को प्रेरित कर सकता है। स्वतंत्रता से पूर्व अनेक समाज सुधारकों- स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने भारी प्रयास किये। समाज में तात्कालिक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुये, परन्तु मोटे तौर पर समाज पुराने ढर्रे पर ही चलता रहा। समाज सुधारकों के क्रम में भारत रत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर जिनका जन्म दिवस 14 अप्रैल को देशभर में मनाया जायेगा, के प्रयास प्रकट हुये। भारत के संविधान को स्वरूप प्रदान करने में अग्रणी डॉ. अम्बेडकर उपरोक्त चुनौतियों से परिचित थे।

संपादकीय

दलित परिवार में जन्में डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं दलित प्रताड़ना व अपमान को झेला, परन्तु उन्होंने उच्च शिक्षित होने के कारण

पीड़ा व दंश को समझकर धर्म परिवर्तन के स्थान पर समतावादी समाज की रचना का संकल्प लिया। उनका शिक्षा की शक्ति में गहरा विश्वास था। उनका दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा ही ज्ञान का द्वार खोल सकती है सामाजिक परिवर्तनों का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। डॉ. अम्बेडकर की सोच थी कि भारत के प्रत्येक बच्चे को ऐसी गुणवत्तायुक्त प्राथमिक शिक्षा मिले जिसका उपयोग वह व्यावहारिक जीवन में कर सके। उच्च शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख अस्त्र बन सकती है। उच्च शिक्षा वैज्ञानिक सोच वाले आत्मनिर्भर नागरिक बनाने में सहायक हो सकती है। इसी दृष्टि से समतावादी समाज की रचना के लिये उन्होंने आजीवन शिक्षा के प्रसार के लिये कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर ने समतावादी समाज की रचना में दलित उद्धार के साथ-साथ लैंगिक असमानता के अन्तर्गत महिलाओं की भारतीय समाज में द्वितीयक स्थान की पीड़ा को समझा व मनुस्मृति की कड़ी आलोचना की। इससे उन्हें धर्म विरोधी भी समझा गया। वास्तव में डॉ. अम्बेडकर एक महान देशभक्त व राष्ट्रीय एकता के पक्षधर थे। समतावादी समाज की रचना द्वारा वे हिन्दू धर्म व संस्कृति की विकृतियों का उन्मूलन चाहते थे। समतावादी समाज में धर्म व अध्यात्म, शील व सदाचार को प्रेरित कर राज्य विहीन

समाज की अग्रसर हो सकते हैं। शिक्षा ही इन सबकी प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है। परन्तु क्या भारत की वर्तमान शिक्षा का स्वरूप इस महती कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ है, पर गंभीर व चिन्तन आवश्यक है।

भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अनेक कमियों और व्याधियों से ग्रस्त है। देश में प्राथमिक शिक्षा का कार्य बच्चों को अक्षर ज्ञान से लेकर साधारण व दैनिक जीवन में उपयोगी ज्ञान व पर्यावरण से परिचित कराना होता है। प्रारंभिक शिक्षा के दौरान ही बच्चे में नैतिक गुणों, कर्तव्यपरायण संस्कारों के समावेश के प्रयास होते हैं। इन सभी के लिये प्रतिबद्ध संकल्पशील व कर्तव्यनिष्ठ शिक्षकों का होना अति आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा की सफलता के लिए संकल्पशील व दृढ़ निश्चयी सामाजिक व पारिवारिक वातावरण आवश्यक है। निसंदेह गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा के लिये उपयुक्त एवं पर्याप्त भौतिक सुविधायें अपेक्षित हैं। उच्च प्राथमिक शिक्षा का कार्य प्राथमिक शिक्षा के लिये तैयार करने का होता है। माध्यमिक शिक्षा बच्चों को भविष्य के लिये तैयार करने का दायित्व निभाती है। सामान्य ज्ञान से लेकर विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति की दक्षता की ओर ले जाने का कार्य करती है। माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर ही छात्र को अपने भावी जीवन में विकल्प चुनने हेतु तैयार करना होता है। यही वह अवस्था है जब छात्र को आधुनिक ज्ञान (मात्र जानकारियाँ नहीं) से परिचित होता है। अनुशासन, कठोर परिश्रम, प्रतियोगिता, सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण से परिचित होता है। उसके व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया एक निश्चित दिशा प्राप्त करती है। उसके स्वयं के विचार व सोच एक आकार लेने लगता है। इस अवस्था में कठोर परिश्रम व सोच उसके भावी जीवन का आधार तैयार करती है। इसी अवस्था में उसे शिक्षक के रूप में एक ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है, जो उसकी प्रतिभा व क्षमताओं को पहचान कर उसे उपयुक्त मार्गदर्शन दे सके। उपरोक्त गुणों से युक्त माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा बच्चों को एक उपयोगी, आत्मनिर्भर, संस्कारयुक्त कर्तव्यनिष्ठ व प्रगतिशील सोच वाले परिवर्तनों को स्वीकार करने वाले नागरिक के रूप में बदलने में सक्षम हो सकती है। ज्ञान के विस्तार व सृजन के साथ-साथ शिक्षा मनुष्य

को आजीविका कमाने योग्य बनाने में सहायक होती है। समाज में सभी को रोजगार (नौकरी) देना न तो सम्भव है और न उचित ही। कोई भी समाज रोजगार चाहने वालों से आगे नहीं बढ़ता है, वरन रोजगार सृजन करने वालों से आगे बढ़ता है। इस उद्देश्य की पूर्ति में माध्यमिक शिक्षा के उपरांत विभिन्न कौशल विकास कार्यक्रमों, व्यावसायिक, प्रोफेशनल व तकनीकी शिक्षा छात्र को स्वयं रोजगार, आत्मनिर्भरता व रोजगार सृजनकर्ता के रूप में विकसित करने का दायित्व निभाती है। उच्च शिक्षा विशिष्ट ज्ञान को पुष्ट करती है। नये ज्ञान का सृजन करती है व समाज को नई दिशाओं में ले जाने व प्रगति को आगे बढ़ाने में सहायक होती है। उच्च शिक्षा मात्र ज्ञान के प्रसार का माध्यम नहीं होनी चाहिये वरन शोध व अनुसंधान द्वारा नये ज्ञान सृजन, विद्यमान ज्ञान के नये नये उपयोग, समाज की सभी प्रकार की समस्याओं के निवारण के उपाय सुझाने में समर्थ होनी चाहिये तब ही उच्च शिक्षा प्रगति सम्पन्नता का वाहक बन सकती है। क्या भारत की वर्तमान शिक्षा इन उद्देश्यों की पूर्ति करती है? पर भी विचार आवश्यक है।

भारत में शिक्षा सरकार का ही दायित्व समझी जाती है। सस्ती सुलभ व गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक से उच्च शिक्षा की व्यवस्था राज्य का दायित्व समझा जाता है। परन्तु क्या राज्य इस दायित्व को पूर्णतः निभा पा रहा है, इसकी उपलब्धियों व असफलताओं का विस्तृत आख्यान विद्यमान है। आदर्श रूप में शिक्षा स्वायत्त व आत्मनिर्भर होनी चाहिये, जिससे समाज की सोच आकांक्षाओं के अनुरूप इसे ढाला जा सके। सरकारी नियंत्रण व वित्तपोषण वाली शिक्षा निर्देशात्मक बन जाती है राजकीय व्यवस्था की सारी कमजोरियाँ उसमें समाहित हो जाती है। भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा स्वायत्त रही। पन्द्रह शताब्दियों के विदेशी शासन विशेष कर अंग्रेजी शासन व्यवस्था में शिक्षा पूर्णतः राज्याश्रित हो गयी। वह परंपरा आज भी जारी है। फलतः भारत के विशाल प्राचीन ज्ञानसागर से न तो समाज परिचित हो पा रहा है, न उसका व्यावहारिक लाभ प्राप्त हो पा रहा है। राज्याश्रित शिक्षा व्यवस्था वित्तीय संसाधनों के अभाव पीड़ा झेल रही है, शिक्षा में नवाचार व नये प्रयोग राज्य निर्देशित है।

भौतिक संसाधनों की अपूर्णताओं के चलते शिक्षा के अधिकार के बावजूद गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तो दूर न्यूनतम साधारण ज्ञान प्रदान करना संभव नहीं हो पा रहा है। माध्यमिक शिक्षा की कमजोर बुनियाद को राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा मिशन द्वारा ठीक-ठाक करने के प्रयास प्रारंभ हुये हैं। उच्च शिक्षा के हालात भी कोई भिन्न नहीं हैं। देश के लगभग 200 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों, आईआईटी व आईआईएम जैसे अन्य उच्च शिक्षण संस्थानों को छोड़ दिया जाय, तो संपूर्ण उच्च शिक्षा ही अर्धचेतनावस्था में है। सभी शैक्षिक सुधार नौकरशाही के कठोर नियंत्रण व ढीली सरकार के कारण उपयुक्त दिशा प्राप्त करने में असमर्थ हैं। देश की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में शिक्षकों का अकाल सा पड़ा हुआ है। शिक्षा में समाज की भागीदारी न्यूनतम रूप में ही विद्यमान है, ऐसे में शिक्षा के उद्देश्य कैसे प्राप्त हों तथा समतावादी प्रगतिशील समाज की रचना कैसे संभव हो, पर प्रश्न चिह्न लगा है। देश में हो रहे आर्थिक परिवर्तनों से देश में 70 करोड़ लोगों का एक ऐसा नया वर्ग तैयार हो गया है, जो गरीबी व भुखमरी से ऊपर परन्तु निम्न मध्यम वर्ग के समकक्ष आर्थिक क्षमता से युक्त है। यह वर्ग कठोर परिश्रम व त्याग द्वारा इस स्थिति में पहुँचा है। इस वर्ग का लक्ष्य केवल जीवन सुधार की आकांक्षा ही नहीं है वरन् अपनी भावी पीढ़ी को शिक्षित, योग्य व सक्षम बनाने के लिये सभी प्रकार के त्याग व अतिरिक्त श्रम के लिये तत्पर है। इस वर्ग के दबाव व वैश्विक शैक्षिक प्रतियोगिता का महत्वपूर्ण भागीदार बनने के लिये गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की व्यवस्था अपरिहार्य हो रही है। सरकार के सीमित संसाधनों को दृष्टिगत कर शिक्षा में निजी उद्यम को महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है। परन्तु अनुभव बतलाता है, निजी शिक्षण संस्थायें अभिभावकों, छात्रों व अध्यापकों के शोषण को ही पोषित कर रहे हैं। फिर भी अनेक शिक्षण संस्थानों ने सामाजिक दायित्व का अनुभव कर श्रेष्ठ व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की व्यवस्था की है। परन्तु यह संख्या नगण्य ही है। आज देश का मिजाज बदला हुआ है। देश सबल राष्ट्र, उन्नत राष्ट्र, प्रगतिशील राष्ट्र व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आकांक्षा पोषित कर रहा है। विश्वास है कि देश का बदला मिजाज ऐसे नेतृत्व को जन्म देगा जो इन आकांक्षाओं को फलीभूत कर सके। □

वैश्विक है, शिक्षा में असमानता

□ विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी



मानवीय नजरिए से शिक्षा में समान अवसर की मांग को खुला समर्थन मिलना चाहिए। लेकिन ऐसा है नहीं, यह मुद्दा विवादास्पद है। उद्यमों और सरकारों की दिलचस्पी खास प्रतिभा वाले लोगों को खास बढ़ावा देने में है, ताकि वे बाद में जिम्मेदार पदों पर काम कर सकें। प्रतिभा को बढ़ावा देने में पढ़े लिखे घर से आने वाले बच्चों को फायदा रहता है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि शिक्षकों को कामगार घरों के बच्चों की तुलना में मध्यवर्गीय घरों के बच्चों पर उच्च शिक्षा पाने का ज्यादा भरोसा होता है। बोल चाल की भाषा ही इसका राज खोल जाती है कि कोई किस सामाजिक पृष्ठभूमि का है। और वह इंटरव्यू में फैसले को भी प्रभावित करती है, चाहे वह कॉलेज की सीट पाने के लिए हो, या किसी कंपनी में ऊंची नौकरी पाने के लिए।

हर इंसान को जीवन में विकास के समान मौके मिलने चाहिए। उनके साथ सामाजिक पृष्ठभूमि, लिंग, धर्म या उम्र के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। अभी तक यह सब कहने की बातें ही हैं। विश्व में कहीं भी समानता की गारंटी नहीं है।

समानता, 18वीं सदी में ब्रिटिश उदारवाद के प्रमुख मुद्दों में एक थी। पूंजीवादी विशेषाधिकार वाले सामंतों की तुलना में अपने अधिकारों को पुख्ता करना चाहते थे। वे चाहते थे सब अपने जीवन के बारे में खुद फैसला करने का अधिकार पाएं। इसमें सामाजिक न्याय सबसे अहम मुद्दा नहीं था। महिलाओं को यूरोप में 19वीं सदी के अंत तक राजनीति में भागीदारी का लोकतांत्रिक अधिकार नहीं था। जर्मनी में अभी भी रोजगार पाने में और समान वेतन के मामले में महिलाओं के साथ भेदभाव होता है।

शिक्षा के समान अवसर

स्कूल और कॉलेज की शिक्षा में भी दुनिया के हर हिस्से में लड़के और लड़कियों के साथ एक जैसा बर्ताव नहीं होता। यूनेस्को अपने 'सब के लिए शिक्षा' कार्यक्रम के साथ इसे बदलना चाहता है। 164 देशों ने सभी बच्चों को मुफ्त

बुनियादी शिक्षा देने, वयस्कों में निरक्षरता को आधा करने और शिक्षा में लैंगिक समानता लाने का फैसला किया है। यूनेस्को में शिक्षा और विकास के लिए प्रभारी मार्क रिचमंड कहते हैं, हर किसी को शिक्षा का अधिकार है। जितनी अधिक हम इसकी मांग करेंगे, सरकारें जितना इसे स्वीकार करेंगी और इसे कानून में शामिल करेंगी, उतना ही अधिक यह उम्मीद बन जाएगी।

मृग मरीचिका

मानवीय नजरिए से शिक्षा में समान अवसर की मांग को खुला समर्थन मिलना चाहिए। लेकिन ऐसा है नहीं, यह मुद्दा विवादास्पद है। उद्यमों और सरकारों की दिलचस्पी खास प्रतिभा वाले लोगों को खास बढ़ावा देने में है, ताकि वे बाद में जिम्मेदार पदों पर काम कर सकें। प्रतिभा को बढ़ावा देने में पढ़े लिखे घर से आने वाले बच्चों को फायदा रहता है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि शिक्षकों को कामगार घरों के बच्चों की तुलना में मध्यवर्गीय घरों के बच्चों पर उच्च शिक्षा पाने का ज्यादा भरोसा होता है। बोल चाल की भाषा ही इसका राज खोल जाती है कि कोई किस सामाजिक पृष्ठभूमि का है। और वह इंटरव्यू में फैसले को भी प्रभावित करती है, चाहे वह कॉलेज की सीट पाने के लिए हो, या किसी कंपनी में ऊंची नौकरी पाने के लिए। इसलिए बहुत से लोगों



के लिए शिक्षा के समान अवसर एक आदर्श स्थिति है। हकीकत में मृग मरीचिका, जिसे कभी हासिल नहीं किया जा सकता।

अधिकांश औद्योगिक देशों में स्कूली शिक्षा अनिवार्य है। इस तरह वे बुनियादी शिक्षा के अधिकार की गारंटी करते हैं। यूनेस्को में वार्षिक शिक्षा रिपोर्ट के लिए प्रभारी पाउलीने रोज कहती हैं, हालांकि बहुत से देशों में ज्यादा से ज्यादा बच्चों को स्कूल जाने का मौका मिल रहा है, अभी भी 6.7 करोड़ बच्चे इससे वंचित हैं। जर्मनी में हायर सेकंडरी तक



स्कूली शिक्षा मुफ्त है। औपचारिक रूप से सभी बच्चे स्कूली शिक्षा पूरी कर यूनिवर्सिटी की पढ़ाई कर सकते हैं। फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसरों के मामले में जर्मनी प्रमुख औद्योगिक देशों में पीछे है।

शिक्षा की गारंटी

पिछड़े देशों में भ्रष्टाचार और गरीबी शिक्षा में समानता नहीं आने दे रहे हैं। गरीब परिवारों के पास फीस देने, किताब खरीदने और स्कूल ड्रेस खरीदने का पैसा नहीं होता। जर्मनी में आलोचकों के अनुसार स्कूल पद्धति ही भेदभाव वाली है। ज्यादातर प्रांतों में चौथी क्लास के बाद ही तय हो जाता है कि बच्चे उस स्कूल में जाएंगे या नहीं, जिससे वे यूनिवर्सिटी में पढ़ सकें। आलोचकों का कहना है कि यह बहुत जल्दी है। इससे खासकर कमजोर सामाजिक पृष्ठभूमि वाले बच्चे और अप्रवासियों के बच्चे पीछे छूट जाते हैं। जर्मनी में भी गरीब परिवार के बच्चे ट्यूशन करने या प्राइवेट स्कूल में पढ़ने की हैसियत नहीं रखते। शिक्षा पाने का औपचारिक अवसर तो मौजूद है, लेकिन ऐसे अवसर का इस्तेमाल करने के लिए प्रोत्साहन की कमी है।

इस कमी को दूर करने के लिए

कामगार परिवारों के बच्चों के लिए आर्बाइटरकिंड डॉट डीई संगठन बनाया गया है। संगठन के कर्मचारी शिक्षा से दूर रहे परिवारों के बच्चों पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। संगठन बनाने वाली कात्या उरबाच कहती हैं, बहुत से लोग सोचते हैं कि यदि किसी के पास आबीटुर अर की डिग्री हो तो वह कॉलेज की पढ़ाई भी करता है, लेकिन आंकड़े दिखाते हैं कि ऐसा नहीं है। जर्मनी में यूनिवर्सिटी शिक्षा नहीं पाने वाले परिवारों के सिर्फ 50 प्रतिशत बच्चे यूनिवर्सिटी की पढ़ाई करते हैं। यह संगठन इन बच्चों की पढ़ाई पूरी होने तक मदद करता है।

बाजार का फैसला

जो सरकारें शिक्षा में निवेश करती हैं, वे अक्सर वे मानवतावश ऐसा नहीं करतीं। अक्सर उसके पीछे आर्थिक हित छुपे होते हैं। जहां खनिज पदार्थों की कमी हो सकती है, जैसे तेल बहुल अरब देशों में, वहां शिक्षा पर निवेश बढ़ा दिया जाता है। जहां वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की कमी है, वहां स्कॉलरशिप के लिए पैसा निकल आता है। जहां विद्यार्थियों को आकर्षित करने के लिए यूनिवर्सिटीयों के बीच प्रतिस्पर्धा हो रही है, वहां सुविधाएं बढ़ा दी जाती हैं, फीस

खत्म कर दी जाती है। सरकार खास इलाकों में युवा कर्मियों को प्रशिक्षित करने के लिए ऐसे कदमों की मदद करती है। ऐसी हालत में कंपनियां भी शिक्षा के क्षेत्र में निवेश करती हैं, जैसे कि जर्मनी या अमेरिका में। शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसर यूनेस्को के लिए औद्योगिक देशों में भी अभी लम्बे समय तक एक मुद्दा बना रहेगा। मार्क रिचमंड कहते हैं, (उच्च विकसित देशों में भी अभी भी आबादी में ऐसे तबके हैं जिनका शिक्षा का स्तर बाकियों जैसा नहीं है। संघर्ष भविष्य में भी जारी रहेगा।)

भारत: शिक्षा सिर्फ़ पैसे वालों के लिए

भारत के आईटी एक्सपर्ट, इंजीनियर और डॉक्टर पूरी दुनिया को अचंभे में डाल रहे हैं। उनके हुनर की पूरी दुनिया में मांग है। लेकिन अंतरराष्ट्रीय स्तर वाली अच्छी शिक्षा बहुत कम भारतीयों को नसीब होती है। ज्ञान, शिक्षा पाने से कुछ ज्यादा है। वह लोगों को विकास करने, राजनीतिक रूप से सक्रिय होने की ताकत देता है। डॉयचे वेले की मुख्य संपादक ऊटे शेफर का कहना है कि यह हमेशा शासक वर्ग के हित में नहीं होता। □

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

क्या सामाजिक बराबरी को प्रोत्साहन देती है शिक्षा ?

□ बजरंगी सिंह



जब तक हम पाठ्यक्रम और शिक्षण-विधि को ऊपर से थोपते रहेंगे। उसे विद्यार्थी के अपने विवेक पर नहीं छोड़ेंगे तब तक शिक्षा में एकरूपता नहीं आयेगी। हमारे पाठ्यक्रम सत्ता तय करती है। उसमें मनुष्य की गरिमा, उसकी विशिष्टता और विशिष्ट व्यक्तित्व को हमारे पाठ्यक्रम और शिक्षण-प्रक्रिया में केन्द्रीय स्थान हासिल है या नहीं? यही उसकी अंतिम कसौटी है। इन्हीं आधारों पर हम आधुनिक मूल्यों में शिक्षा की निष्ठा की सही परख कर सकते हैं। यदि हम मनुष्य को स्वतंत्र और अद्वितीय नहीं मानते तो हम उसे वास्तविक समता और मानवीय गरिमा से भी वंचित कर देते हैं। क्योंकि यदि चेतना की स्वतंत्रता नहीं है, तो मनुष्य की समता भी पशु-समाज की समता की तरह है।

आज के इस आधुनिक भारत में जब हम हर क्षेत्र में विकास की ओर बढ़ रहे हैं तो इसका भी चिन्तन करना जरूरी हो गया है कि हमारी शिक्षा क्या सामाजिक मूल्यों और आदर्शों को मजबूत बनाने में मददगार साबित हो रही है। शायद नहीं। इसलिए आज यह जरूरी हो गया कि हमारे शिक्षाविद् और हमारी सरकार इस दिशा में चिन्तन-मनन करें। यह सर्व विदित है कि स्वतंत्रता समता और बन्धुत्व हमारे सामाजिक आचरण के आदर्श बने हुए हैं। शायद ही कोई ऐसा हो जो इन आदर्शों से असहमति खता हो। इन तीनों आदर्शों में किसी न किसी की उपेक्षा करने या अपने संकीर्ण स्वार्थों के कारण उनके विरुद्ध आचरण करने से समस्या उत्पन्न होती है और उनका कोई स्थायी समाधान तब तक नहीं हो सकता है जब तक हमारा व्यक्तिगत और सामाजिक राजनीतिक आचरण इन आदर्शों के अधिकाधिक अनुकूल न हो जाय।

यदि आधुनिक दृष्टि मनुष्य को केन्द्र में रखती है तो प्रकारांतर से वह मनुष्य मात्र की गरिमा, स्वतंत्रता और समानता को उन बुनियादी मूल्यों के रूप में स्वीकार कर रही होती है जिन्हें फ्रेंच राज्यक्रांति के समय से ही नयी समाज-रचना के बुनियादी आधारों के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। इन मूल्यों का सामाजिक राजनतिक प्रतिफल लोकतंत्र, आर्थिक सामाजिक बराबरी और अहिंसा, भाई-चारे के व्यवहार में होता है। इसलिए स्वाभाविक ही यह सवाल विचारणीय हो जाता है कि शिक्षा के माध्यम से मनुष्य में इन आधुनिक मूल्यों के प्रति संवेदनागत, विश्वासगत एवं आचरणगत निष्ठा कैसे विकसित की जा सकती है और क्या हमारी वर्तमान शिक्षा ऐसा कर पा रही है। क्योंकि शिक्षा वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्ययस्क होता हुआ व्यक्ति समूह के जीवन और संस्कृति में प्रवेश करता है। इसलिए यह देखना होगा कि क्या इन आधुनिक मूल्यों का

प्रतिफल हमारी शिक्षण-प्रक्रिया में दिखाई देता है। क्या हमारी शिक्षा मनुष्य की स्वतंत्र विवेकशक्ति को पुष्ट करती है। सामाजिक बराबरी को जिसमें स्त्री-पुरुषों की बराबरी भी शामिल है। प्रोत्साहन देती और अहिंसा व भाई-चारे से प्रेरित सहयोग की मानसिकता का विकास करती है? कहीं शिक्षा गैर बराबरी और अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ावा तो नहीं दे रही है?

जब तक हम पाठ्यक्रम और शिक्षण-विधि को ऊपर से थोपते रहेंगे। उसे विद्यार्थी के अपने विवेक पर नहीं छोड़ेंगे तब तक शिक्षा में एकरूपता नहीं आयेगी। हमारे पाठ्यक्रम सत्ता तय करती है। उसमें मनुष्य की गरिमा, उसकी विशिष्टता और विशिष्ट व्यक्तित्व को हमारे पाठ्यक्रम और शिक्षण-प्रक्रिया में केन्द्रीय स्थान हासिल है या नहीं? यही उसकी अंतिम कसौटी है। इन्हीं आधारों पर हम आधुनिक मूल्यों में शिक्षा की निष्ठा की सही परख कर सकते हैं।

यदि हम मनुष्य को स्वतंत्र और अद्वितीय नहीं मानते तो हम उसे वास्तविक समता और मानवीय गरिमा से भी वंचित कर देते हैं। क्योंकि यदि चेतना की स्वतंत्रता नहीं है, तो मनुष्य की समता भी पशु-समाज की समता की तरह है। स्वतंत्रता और निर्णय करने की क्षमता से युक्त वही हो पाता है, जिसने सत्ता को ताकत को अपने में केन्द्रित कर लिया है।

जाहिर है कि आधुनिक मूल्य दृष्टि की प्रतिष्ठा के लिए समग्र-प्रक्रिया में बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता है। यह तभी संभव है, जब पाठ्यक्रम और शिक्षण-प्रक्रिया में विद्यार्थी की सहभागिता को महत्व मिले। शिक्षा शिक्षक और विद्यार्थी के बीच ही नहीं बल्कि विद्यार्थियों के बीच भी एक सहयोग और समता-भाव बन सके। हमें देखना होगा कि शिक्षा कहीं गैर बराबरी, हीन भावना और दमन का पोषण न करने लगे। इसके लिए सम्पन्न और सुविधाहीन वर्गों के लिए स्कूलों के भेद को मिटाने, साथ-साथ प्रार्थना से लेकर परीक्षा तक हर स्तर पर विद्यार्थी में असमर्थता



और पर-निर्भरता के अहसास का निराकरण करना होगा। जब तक शिक्षा की प्रक्रिया को अनौपचारिकता, खुलेपन, समानता और सहयोग की भावना के आधार पर विकसित नहीं किया जाता तब तक शिक्षा में समानता और आधुनिक मूल्य दृष्टि का पोषण नहीं हो सकेगा।

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक अवसर पर कहा था कि शिक्षा वह नहीं, जो मनुष्य को संवेदन शून्य बना दे। लेकिन हमने शिक्षा को चौपट कर दिया और ऐसी शिक्षा दे रहे हैं जो मनुष्य-मनुष्य में भेद कर रही है। समाज आत्म केन्द्रित होता जा रहा है। ध्यान से देखें तो इनमें बहुत-सी बातें नयी है और नया दृष्टिकोण लेकर चलायी जा रही हैं। मनुष्य की समानता और सभी को समान अवसर मिले यह हमारा दृष्टिकोण बनना चाहिए। नौजवानों को नए परिवर्तनों के लिए तैयार रहना होगा तभी समाज और शिक्षा में भी समानता और समता की बयार बहेगी। लेकिन ऐसा नहीं हो पा रहा है। आजादी के 66 वर्षों बाद भी गरीब के लिए अलग स्कूल और अमीर के बच्चे के लिए अलग स्कूल अभी भी चल रहे हैं। शिक्षा आज बेची और खरीदी जा रही है। सामान्य परिवार के बच्चे को उच्च शिक्षा आज भी नसीब नहीं है। लेकिन पैसे वालों तथा मंत्रियों, विधायकों तथा सांसदों के बच्चे आसानी से विश्वविद्यालय में प्रवेश पा जाते हैं। यदि इनके बच्चे फेल भी हो जाय तो उन्हें अमेरिका या यूरोप भेज दिया जाता है। वह वहां से इंजीनियरिंग की डिग्री लेकर आ जाता है। फिर किसी निजी कम्पनी का सीईओ बन जाते हैं। यह कैसी विडम्बना है इससे कितनी निराशा फैलती है, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। न्याय और समता के जरिए ही देश समृद्ध हो सकता है। उसने शिक्षा में और अधिक असमानता ही नहीं बढ़ा दिया है बल्कि उसे महंगा भी कर दिया है।

इन परिस्थितियों में एक गरीब व्यक्ति अपने बच्चे को अच्छी और उच्च शिक्षा कैसे दे पायेगा ? यह एक ऐसा सवाल सामने है,

जिसका उत्तर पाना कठिन है। हमारे देश और राज्यों की सरकारों ने शिक्षा के क्षेत्र में तो अमीरी-गरीबी की खाई को और गहरा किया है। इसलिए जरूरी है कि शिक्षा राजनीति से अलग रखी जाय और उसे सर्वग्राही बनाया जाय तभी शिक्षा सब को हासिल हो पायेगी। □

(महामंत्री, अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षक महासंघ)

शैक्षिक मंथन मासिक सम्बन्धी विवरण घोषणा पत्र फार्म-4 (नियम 8 के अनुसार)

- | | |
|--|--|
| 1. प्रकाशन स्थान | जयपुर |
| 2. प्रकाशन अवधि | मासिक |
| 3. मुद्रक का नाम
(क्या भारत का नागरिक है) | महेन्द्र कपूर
हाँ
भारती भवन,
बी-15, न्यू कॉलोनी,
जयपुर (राज.)302001 |
| 4. प्रकाशक का नाम
(क्या भारत का नागरिक है) | महेन्द्र कपूर
हाँ
भारती भवन,
बी-15, न्यू कॉलोनी,
जयपुर (राज.)302001 |
| 5. सम्पादक का नाम
(क्या भारत का नागरिक है) | प्रो. सन्तोष पाण्डेय
हाँ
डी-27, शांति पथ,
तिलक नगर,
जयपुर(राज.)302004 |
| 6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र की समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार हों। - कोई नहीं
मैं महेन्द्र कपूर एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं। | |

दिनांक 1.3.2014

ह0/-

प्रकाशक



राष्ट्र हित में आवश्यक, समताकारी समाज

□ बजरंग प्रसाद मजेजी

आरक्षण से दलित वर्ग को प्रत्यक्षतः आर्थिक लाभ, नौकरियाँ शिथलन का लाभ, पदोन्नति एवं खाद्य पदार्थों में छूट का लाभ मिल रहा है। सामाजिक प्रतिष्ठा के पदों पर पदासीन होने का अवसर भी मिल रहा है।

परन्तु, दूसरे पक्ष से विचार करें तो शिक्षा में योग्यता अंक शिथिलन से मिल रहे लाभ के कारण शैक्षिक गुणवत्ता में कमी दिखाई दे रही है।

इस कारण प्रतियोगी परीक्षाओं में बहुत कम प्रतिशत में दलित वर्ग भाग ले पाता है। इसका दुष्परिणाम भी देखने को मिल रहा है। इसलिये नौकरी, पदोन्नति में शैक्षिक योग्यता में सभी वर्ग को समान अंक रखना चाहिए ताकि सभी वर्ग शैक्षिक योग्यता प्राप्त हेतु समान परिश्रम कर उन्नति करें।

भारत में वर्ण व्यवस्था की कल्पना सामाजिक नियोजन को दृष्टिगत रख कर की गई थी। भाव यह था कि कार्य का बटवारा कर व्यक्ति अपना योग समाज को दे। परन्तु, कालान्तर में यह व्यवस्था जातियों में परिवर्तित होती गई। परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति जन्म से व्यवसायगत जाति से पहचाना जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उच्चता और निम्नता की भावना पनपने लगी। जिस कारण एक वर्ग अछूता समझा जाने लगा। रही सही कसर पुरातनपंथियों की सड़ी गली परम्पराओं ने संकीर्णता की ज्वाला को धधका दिया, जिसके कारण सामाजिक असमानताएं उत्पन्न हो गई। स्थिति ऐसी हो गई कि देश में कई धार्मिक संतों, सामाजिक सुधारकों को छुआछूत, जातिवर्ग भेद के विरुद्ध आन्दोलन करने पड़े। ज्योतिबा फूले, डॉ. रामजी भीमराव अम्बेडकर जैसे आधुनिक युग में समाज सुधारकों ने अछूतोद्धार के लिये बीड़ा उठाया।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का मानना था कि देश केवल स्वतंत्र कराने से काम नहीं चलेगा।

उसे श्रेष्ठ राष्ट्र बनाने के लिये अथक परिश्रम चाहिये। जिससे प्रत्येक नागरिक को सामाजिक-राजनैतिक समानता मिल सके। यदि स्वराज्य में अछूतों के साथ भेदभाव किया गया तो राष्ट्र उन्नतिशील नहीं बन सकता। उन्होंने समझ लिया कि हिन्दू समाज सुधारकों पर आश्रित रहकर अछूतों का उद्धार संभव नहीं है। उन्होंने दलितों को कहा-जिन्दगी की सत्यता, सम्मान और राष्ट्रभक्ति जैसे उदात्त आदर्शों की उपलब्धि के लिये उत्सर्ग करके अजर और अनश्वर बनाया जा सकता है। आजीवन समाज का एक वर्ग लकवे का शिकार नहीं रह सकता। वे चाहते थे कि अछूत कानून का संरक्षण प्राप्त कर दलित शक्तिशाली बने। अछूत वर्ग को सामाजिक मान्यता दिलाने के वे प्रबल पक्षधर थे। उनकी मान्यता थी कि शिक्षित व पढ़ा लिखा व्यक्ति स्वयं अच्छा नागरिक बन सकता है।

समताकारी समाज निर्माण के लिये अम्बेडकर के प्रयत्न

विधिमन्त्री के रूप में उन्होंने हिन्दू कोड बिल जैसा महत्वपूर्ण बिल पारित कराया। स्त्रियों को पुरुषों के समान सामाजिक, आर्थिक अधिकार



दिलाने के लिये कटिबद्ध थे। भारतीय संविधान में अछूतों को उनके मानवीय अधिकार देने तथा समानता के स्तर तक पहुँचाने के लिये आरक्षण-संरक्षण की सीढ़ियाँ प्रदान कर गये। उन्होंने जातिवाद का सम्पूर्ण बहिष्कार करते हुये सच्चे सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक राष्ट्र के रूप में विकसित करने की अपील की। उन्होंने दलितों को अपना अधिकार मांगना सिखाते हुये कहा कि वे अपना भाग्य स्वयं गढ़ें। सदियों से गुंगे बने रहे, अब नहीं रहना है। इस हेतु डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने सामाजिक आन्दोलन किये, जिसके कारण दलितों को मन्दिर प्रवेश का अवसर मिला, सार्वजनिक जलाशयों पर पानी भरना और विद्यालयों में छुआछूत समाप्त हुई। उन्होंने 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किया। जिसके उद्देश्य थे - दलित जातियों में शिक्षा का प्रसार एवं छात्रावास खोलना, पुस्तकालय सोशल सेन्टर, स्टडी सर्किल खोलकर दलितों में जागृति व संस्कारों का निर्माण करना, औद्योगिक तथा कृषि विद्यालय

खोलकर दलित वर्ग की आर्थिक उन्नति के प्रयास करना, हिन्दू समाज में सामाजिक मानवतावाद लाना।

समताकारी समाज रचना में शिक्षा की भूमिका

डॉ. भीमराव अम्बेडकर को बचपन में जातीय भेदभाव के कारण जो असहनीय पीड़ाएं झेलनी पड़ी, वे पीड़ाएं उन्हें जीवन भर कचोटती रही। उन्हें 1913 में महाराजा गायकवाड़ ने छात्रवृत्ति देकर कोलंबिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) में भारत के प्रथम अछूत को विदेश में शिक्षा लेने भेजा। शिक्षा का महत्त्व समझकर, उन्होंने देश की स्वतंत्रता के पश्चात अनुसूचित जाति-जनजाति को समान अवसर दिलाने हेतु आरक्षण सुविधा प्रदान की, जो वर्तमान तक चल रही है। यह भीमराव अम्बेडकर की दूरदर्शिता थी कि दलितों को शिक्षा, नौकरी में आरक्षण लाभ के कारण वर्तमान में दलित वर्ग ऊँचे-ऊँचे पदों पर पदासीन हैं और व्यवसाय उद्योग धन्धों, राजनीति में शीर्ष पदों तक पहुँचे हैं। उन्होंने स्वयं ने शिक्षा का महत्त्व समझकर निरन्तर अध्ययन कर

एम.ए., एम.एस.एसी., पी.एचडी, बार एट लॉ की डिग्री प्राप्त की। समतावादी समाज निर्माण के प्रयत्न के कारण उन्हें भारत का लिंकन, मार्टिन लूथर, मार्क्स, महर्षि तथा बोधिसत्व की उपाधि से विभूषित किया गया।

आरक्षण से दलित वर्ग को प्रत्यक्षतः आर्थिक लाभ, नौकरियाँ शिथलन का लाभ, पदोन्नति एवं खाद्य पदार्थों में छूट का लाभ मिल रहा है। सामाजिक प्रतिष्ठा के पदों पर पदासीन होने का अवसर भी मिल रहा है। परन्तु, दूसरे पक्ष से विचार करें तो शिक्षा में योग्यता अंक शिथिलन से मिल रहे लाभ के कारण शैक्षिक गुणवत्ता में कमी दिखाई दे रही है। इस कारण प्रतियोगी परीक्षाओं में बहुत कम प्रतिशत में दलित वर्ग भाग ले पाता है। इसका दुष्परिणाम भी देखने को मिल रहा है। इसलिये नौकरी, पदोन्नति में शैक्षिक योग्यता में सभी वर्ग को समान अंक रखना चाहिए ताकि सभी वर्ग शैक्षिक योग्यता प्राप्त हेतु समान परिश्रम कर उन्नति करें। □

(कोषाध्यक्ष, अ.भा.रा.शैक्षिक महासंघ)

Indian univs second-grade?

If rankings and grading are any indicator of quality, Indian institutes of higher learning have a long way to go both locally and globally. An astonishing 89% of India's accredited colleges and universities are graded either 'average' or 'below average', raising serious doubts about their quality.

While globally India's top rated institute Panjab University ranks between 226 and 250, the National Assessment and Accreditation Council's (NAAC) assessment is no better, with 62% of universities accredited rated average or below average. More-

over, the actual picture on the ground is likely to be even worse since only 179 varsities and 5,224 colleges have valid accreditation out of a total of 630 varsities and 33,000 colleges.

NAAC director AN Rai said, "Only 11% of our accredited institutions are 'A' grade, while 71% are 'B' grade. The remaining 18% are in the lowest 'C' grade. This definitely shows the quality of the institutions. But we have to consider various parameters. As most institutions are government-run, there is a serious financial and infrastructure crunch which adversely affects the assessment. But we have to

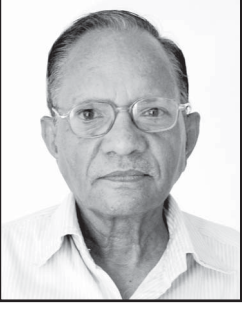
appreciate the fact that despite being voluntary they came for the assessment." From this year, however, accreditation has been made mandatory and linked to funding under Rashtriya Uchchar Shiksha Abhiyan.

NAAC officials, however, believe the real picture will be revealed only after these institutes which have so far shied away from accreditation are assessed.

"While there is no doubt that a lot needs to be done to improve the quality of our institutions, things could be even worse. Only time will tell," said Rai.

समता के शिल्पकार : डॉ. भीमराव अम्बेडकर

□ विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी



अछूत मानी जाने वाली जाति में जन्म लेने के कारण भीमराव को शिक्षा संस्थानों में घोर अपमान वाली स्थितियों से गुजरना पड़ा फिर भी उन्होंने शिक्षा के लिए मिली सुविधाओं का पूर्ण सदुपयोग किया तथा अच्छे शिक्षा संस्थानों से कला, वाणिज्य, संस्कृत, अर्थशास्त्र आदि विषयों में वे सभी उपाधियाँ प्राप्त की जो उस समय तथाकथित उच्च परिवारों के बच्चे ही प्राप्त किया करते थे। इस प्रकार डॉ. भीमराव का जीवन, यह सन्देश देता है कि जहाँ चाह हो वहाँ राह स्वतः ही बनती चली जाती है।

निर्धन तथा सामाजिक उपेक्षा के शिकार परिवार में जन्म लेकर अपनी प्रतिभा के बल पर समाज में उच्च स्थान बनाने वाले व्यक्तियों के सैकड़ों उदाहरण विश्व इतिहास में मिल जायेंगे मगर अपनी प्रतिभा का सम्पूर्ण प्रयोग वंचित वर्ग के उद्धार हेतु करने का डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे उदाहरण विश्व में अन्यत्र खोजना कठिन कार्य है। विश्व की सर्वाधिक प्राचीन भारतीय संस्कृति में जाति प्रथा से उत्पन्न आत्मघाती विकार की शल्य चिकित्सा कर संस्कृति को नया जीवन प्रदान करने का जो प्रयास डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने किया, उसे सही समय पर की गई उचित कार्यवाही कहा जा सकता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर आज भी प्रासंगिक हैं क्योंकि जो कार्य उन्होंने प्रारम्भ किया वह आज भी अधूरा है। स्वतन्त्र व जनतान्त्रिक भारत में डॉ. अम्बेडकर के विचार महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे बड़े सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा व नैतिकता का उपयोग करने की प्रेरणा देते हैं।

संस्कार से उभरी प्रतिभा

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि भीमराव जन्म से ही प्रतिभावान थे, मगर उनकी प्रतिभा को सकारात्मक दिशा देने में पिता राम जी सकपाल से मिले संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भीमराव के पिता सेना में सूबेदार पद पर रह कर शिक्षण का कार्य करते थे। पिता ने इनको प्रारम्भिक तौर पर घर पर ही शिक्षित करने के साथ ही जीवन को मर्यादित करने वाले रामायण, महाभारत, सन्त कबीर के उपदेश तथा संध्या वन्दना आदि कर्मों से संस्कारित किया था। पिता ने स्कूली पुस्तकों के साथ साथ अन्य पुस्तकों के अध्ययन हेतु भी प्रेरित किया। भीमराव के पिता का पूर्ण प्रयास रहा उनके प्रतिभावान बच्चे को शिक्षा के अच्छे अवसर उपलब्ध हों। इनकी विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित हो बड़ोदा व कोल्हापुर के महाराजा ने छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत की जिससे भीमराव विदेशों में जाकर उच्च अध्ययन कर सके। उस समय के समाज में अछूत मानी जाने वाली जाति में जन्म लेने के कारण भीमराव को शिक्षा संस्थानों में घोर अपमान वाली स्थितियों से गुजरना पड़ा फिर भी उन्होंने शिक्षा के लिए मिली सुविधाओं का पूर्ण सदुपयोग किया

तथा अच्छे शिक्षा संस्थानों से कला, वाणिज्य, संस्कृत, अर्थशास्त्र आदि विषयों में वे सभी उपाधियाँ प्राप्त की जो उस समय तथाकथित उच्च परिवारों के बच्चे ही प्राप्त किया करते थे। इस प्रकार डॉ. भीमराव का जीवन यह सन्देश देता है कि जहाँ चाह हो वहाँ राह स्वतः ही बनती चली जाती है।

शिक्षक से जीवन की शुरुआत

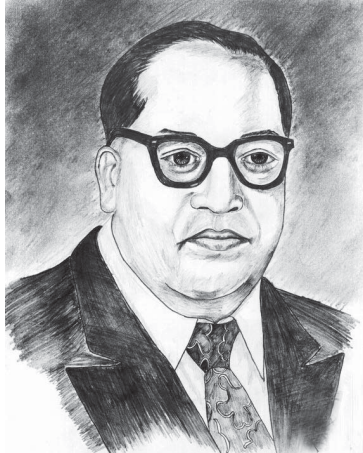
सामान्य परिवार से होने के कारण भीमराव की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी अतः जैसे-तैसे अध्ययन पूर्ण कर अर्थार्जन करना भीमराव के लिए आवश्यक था। जीविकोपार्जन हेतु भीमराव ने शिक्षण के व्यवसाय को अपनाया। छूआछूत के अपमान ने यहाँ भी इनका पीछा नहीं छोड़ा मगर शिक्षक के रूप में डॉ. भीमराव अपने विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय रहे। विस्तृत अध्ययन की प्रवृत्ति, संभाषण कला में प्रवीणता तथा शिक्षा की शक्ति में गहन आस्था के कारण डॉ. भीमराव एक स्वाभाविक शिक्षक थे। बाद में कानून का अध्ययन कर डॉ. भीमराव वकालत करने लगे मगर उनके भीतर का शिक्षकत्व सदा जिन्दा रहा। डॉ. भीमराव का मानना था कि शिक्षा ही ऐसी कुंजी है जिससे ज्ञान का खजाना खुल सकता है। वे शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानते थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक बच्चे को ऐसी प्राथमिक शिक्षा मिले जिसका उपयोग वह अपने जीवन में कर सके। उच्च शिक्षा के विषय में भी उनका सोच स्पष्ट था। वे चाहते थे स्नातक व अधिस्नातक स्तर की कक्षाएं एक ही परिसर में लगे ताकि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों को अनुभवी शिक्षकों का सानिध्य मिल सके। उच्च शिक्षा बच्चे को वैज्ञानिक सोच वाला आत्म निर्भर नागरिक बनाने में सक्षम होनी चाहिए। डॉ. भीमराव अपने लेखन व भाषणों के माध्यम से लोगों को शिक्षित करने का कार्य जीवन भर करते रहे थे।

सवर्णों का सहयोग

डा. भीमराव अम्बेडकर को मात्र दलितों का नेता मानना न्याय संगत नहीं होगा। अम्बेडकर को बचपन से ही सवर्णों का स्नेह व सहयोग निरन्तर मिलता रहा था। उनके नाम के साथ जुड़ा अम्बेडकर उपनाम भीमराव से अत्यन्त स्नेह रखने वाले ब्राह्मण गुरु महादेव अम्बेडकर का दिया हुआ है। डा. भीमराव अम्बेडकर ने 1936 में इण्डिपेन्डेन्ट लेबर पार्टी बना कर बम्बई प्रदेश में चुनाव लड़ा तो अनुसूचित जातियों

के लिए आरक्षित 15 में से 13 सीटें इनकी पार्टी को मिलने के साथ दो सामान्य सीटों पर भी इनके दल की जीत सवर्णों में इनकी लोकप्रियता को दर्शाता है। व्यक्तिगत जीवन में भी उनके जन्म से सवर्ण रहे व्यक्तियों का स्नेह मिला। कहते हैं कि इनकी पहली पत्नी के निधन के बाद इन्होंने जिस शारदा कबीर नामक जिस महिला से पुनः विवाह किया, वह जन्म से सारस्वत ब्राह्मण थी। विवाह के बाद शारदा ने सविता नाम ग्रहण कर लिया था। जातिप्रथा के विरोध में अम्बेडकर द्वारा चलाए गए आन्दोलन के दौरान मनुस्मृति को जलाने वाला जी.एन.सहस्रबुद्धे भी जन्म से ब्राह्मण बताया जाता है। जवाहरलाल नेहरू व सरदार वल्लभ भाई पटेल भी अम्बेडकर की योग्यता के कायल थे, कांग्रेस से मतभेद होने के बावजूद अम्बेडकर को संविधान सभा के लिए चुनाव तथा संविधान प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाने में सहायक रहे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भी डा. अम्बेडकर को सदैव सम्मान दिया।

डा. अम्बेडकर समाज में दलितों के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार से व्यथित थे। ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि उनके जैसे मेधावी व उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को भी तत्कालीन समाज, अपमानित करने से नहीं चूका, तो सामान्य दलित की स्थिति का तो अनुमान लगाना ही कठिन है। डा. अम्बेडकर हिन्दू समाज की वर्ण व जाति व्यवस्था को छूआछूत का स्रोत मानते थे इस कारण इनका विश्वास था कि जाति प्रथा की समाप्ति के बिना समाज से छूआछूत का अन्त नहीं हो सकता। उन्होंने दलितों को संगठित कर अपनी संपूर्ण शक्ति जाति प्रथा को नष्ट करने के संघर्ष में लगा दी। दलितों के लिए अलग निर्वाचन सूची की मांग भी उस संघर्ष रणनीति का ही भाग थी मगर महात्मा गांधी के विरोध के कारण उन्हें समझौता करना पड़ा परन्तु वे दलितों के लिए कुछ पद आरक्षित करवाने में सफल रहे थे। डा. अम्बेडकर का संघर्ष दलितों के हितों तक ही सीमित नहीं था, स्त्रियों के हित के लिए भी प्रयासशील थे। उन्होंने दलितों को भी बुराईयां छोड़ने तथा स्वयं का विकास करने तथा सभी के बराबर आने का आव्हान भी



14 अप्रैल 1891 - 6 दिसम्बर 1956

किया। इसके लिए शिक्षा के प्रसार के लिए अथक प्रयास भी किए।

अम्बेडकर का राष्ट्रप्रेम

देश में दलितों के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार से क्षुब्ध व डॉ. भीमराव अम्बेडकर का देश के प्रति व्यवहार बहुत ही अच्छा रहा। डॉ. अम्बेडकर दलित उद्धार को देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता से भी अधिक महत्वपूर्ण मानते थे फिर भी उन्होंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे देश के स्वतन्त्र आन्दोलन को कोई हानि पहुँची हो। 1942 में बम्बई विधान सभा में बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर ने शपथपूर्वक देश को विश्वास दिलाया था कि कुछ बिन्दुओं पर सवर्ण हिन्दुओं से उनका संघर्ष जरूर है मगर देश की रक्षा हेतु वे जान न्यौछावर करने को तैयार हैं। वे पूर्ण देशभक्त तथा राष्ट्रीय एकीकरण के पक्षपाती थे। उनकी लड़ाई हिन्दु धर्म में आई विसंतियों से थी फिर भी धर्म के विरुद्ध नहीं थे। उनका मानना था कि राज्यविहीन समाज की स्थापना भौतिक क्रान्ति से नहीं हो सकती। राज्यविहीन समाज के लिए व्यक्ति का धर्मनिष्ठ होना जरूरी है। लोकतन्त्र व संसदीय व्यवस्था में विश्वास करने वाले डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि धर्म व आध्यात्म से ही शील व सदाचार उत्पन्न होते हैं जो राज्यविहीन समाज के सुचारू संचालन की आवश्यक शर्त है। बौद्ध धर्म को अपनाने के पीछे पीछे उनका सोच था कि समतामूलक समाज की स्थापना करने में बुद्ध, मार्क्स से

अधिक सफल रहे क्योंकि बुद्ध ने वह उपलब्धि बिना अधिनायकवाद के प्राप्त की।

दलितों के मसीहा

स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी आदि नेताओं ने दलितों के उद्धार के प्रयास किए मगर डॉ. भीमराव अम्बेडकर ही दलितों के मसीहा बन कर उभरे। इससे में अम्बेडकर की यह सोच सही थी कि एक दलित ही दलितों का सही नेतृत्व कर सकता है। दलित समाज से आने के कारण डॉ. अम्बेडकर ने जो पीड़ा भोगी उसी ने उन्हें कठिन संघर्ष की शक्ति दी तथा दलितों के लिए वे जो कर सके उनके पूर्व किसी अन्य नहीं किया था।

भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा को लेकर भी डॉ. अम्बेडकर के मन में बड़ी पीड़ा थी। वे मनुस्मृति का विरोध इस कारण भी करते थे कि मनुस्मृति स्त्रियों की स्वतंत्रता का विरोधी है। मनुस्मृति में स्त्री बाल्यकाल में पिता, बाद में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण रहने का निर्देश दिया गया है। स्त्रियों के भले के लिए ही स्वतन्त्र के भारत के प्रथम कानून मंत्री डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल तैयार किया था मगर पण्डित जवाहरलाल नेहरू से विवाद होने पर मंत्रीमण्डल से त्यागपत्र देने से नहीं झिझके।

आज जब देश एक विचित्र संक्रमणकाल से गुजर रहा है तब डॉ. अम्बेडकर के विचारों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाना आवश्यक है। आज राजनैतिक दल दलित उद्धार के नाम पर अपनी अपनी सत्ता को मजबूत करने में लगे हैं जबकि बहुसंख्य दलित आज भी परेशानियों के भँवरजाल में फंसा हैं। जिस जाति प्रथा को समाप्त करने लिए डॉ. अम्बेडकर ने जीवन भर कार्य किया आरक्षण की राजनीति के कारण वही जाति प्रथा आज और विकृत मगर मजबूत होती नजर आ रही हैं। संविधान प्रदत्त मार्ग पर चल कर आज भारत समर्थता के पद पर अग्रसर है, मगर सावधानी नहीं रही तो परेशानी में भी पड़ सकता है। आवश्यकता डॉ. अम्बेडकर की तरह देश हित में प्राण न्यौछावर करने की, शपथ लेने की है। □

(बाल व विज्ञान विषयक लेखक)

प्रेरणादायक है डॉ. अम्बेडकर का जीवन

डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर ने शिक्षा के माध्यम से न सिर्फ भारतीय भूखंड के इतिहास में मानवीय एकता की नींव रखी, बल्कि उनका विद्यार्थी जीवन आज भी न सिर्फ समस्त भारत बल्कि समस्त विश्व के विद्यार्थियों के लिए प्रेरणादायक है।

भारतीय समाज में फैली अस्पृश्यता की रुढ़िवादी परंपरा के कारण भीमराव के सामने शिक्षा प्राप्ति में अनेकों कठिनाईयाँ आती रहीं परन्तु अम्बेडकर की लगन और उनके प्राथमिक स्कूल के शिक्षक और बड़ोदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ की अनुकृपा से अम्बेडकर ने अपनी शिक्षा पायी।

मेधावी छात्र अंबेडकर को गाँव की पाठशाला में समाज के एक वर्ग के बच्चों के साथ नहीं बैठने दिया जाता था और न ही संस्कृत पढ़ने दी जाती थी। गाँव की पाठशाला में वह कक्षा के बाहर बैठ कर ही पढ़ा करते थे। उन्हें पाठशाला के मटके से पानी पीने से भी वर्जित कर रखा था। पर अम्बेडकर की पढ़ने की लगन और कुशाग्रबुद्धि से प्रेरित हो कर उनके एक शिक्षक ने उनका नाम अम्बेवाडिकर से बदल कर अम्बेडकर रख दिया जिससे की वह आगे भी पढ़ पाए।

मुम्बई में छोटा घर होने के कारण अम्बेडकर कभी बकरियों के तबेले में पढ़ा करते थे, तो कभी पार्कों में और कभी सड़कों पर लेम्प पोस्टों के नीचे। यहाँ भी अस्पृश्यता की कुरीति ने उनका पीछा नहीं छोड़ा और उन्हें संस्कृत पढ़ने से वर्जित किया गया जिस कारण उन्होंने पर्सियन पढ़ी। एक बार जब कक्षा में उन्हें ब्लेक बोर्ड पर कुछ हल करने को बुलाया गया तो कक्षा के कुछ बच्चों ने बोर्ड के पीछे रखे अपने टिफिन उठा लिए की कहीं उन पर अम्बेडकर की छाया न पड़ जाए।

स्नातक में बड़ोदा के महाराज सयाजीराव की सेवा करने के दौरान इस मेधावी छात्र से प्रेरित हो कर महाराजा सयाजीराव ने उन्हें छात्रवृत्ति दे कर कोलंबिया विश्वविद्यालय, अमेरिका पढ़ने के लिए भेजा। अमेरिका में अम्बेडकर छात्रवृत्ती से पैसे बचा कर अपने घर भी भेजा करते थे



और कॉफी - ब्रेड पर ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। यहाँ उन्हें जब भी समय मिलता वह पुस्तकालय में जा कर पढ़ा करते थे। उनकी शिक्षा और ज्ञान की तृष्णा ने उन्हें अधिकाधिक ज्ञान अर्जित करने के लिए प्रेरित किया। यहीं विश्वविख्यात दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, शिक्षावादी और उनके प्राध्यापक जान डेवी के संपर्क में आने से उन्होंने समाज और लोकतंत्र को बेहतर बनाने में शिक्षा की भूमिका को समझा। उनकी थीसिस (निबंध) 'प्राचीन भारतीय वाणिज्य' के लिए उन्हें कला में स्नातकोत्तर की उपाधि से नवाजा गया। उनके पेपर 'भारत में जातियाँ' को भारतीय बर्बर सामाजिक संरचना का पहला वैज्ञानिक विश्लेषण माना जाता है। उनकी थीसिस ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त विकास के लिए उन्हें डाक्टरेट की उपाधि से नवाजा गया जिसने उनके लिए लंदन स्कूल ऑफ इकनामिक्स के द्वार खोल दिए और फिर विधिशास्त्र के। परन्तु उनकी छात्रवृत्ति का समय खत्म हो गया और उसे बढ़ाने के लिए वे बड़ोदा के महाराजा सयाजीराव से मिलने भारत वापस आ गए।

अमरीका से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने वाले अम्बेडकर को अस्पृश्यता के कारण बड़ोदा में किसी ने ठहरने की जगह भी नहीं दी, उन्हें होटलों से भी भगा दिया जाता और पारसी अतिथि गृह में भी जगह नहीं दी गयी। मुम्बई में वह दो वर्षों तक राजनीतिक

अर्थव्यवस्था के प्राध्यापक रहे। जल्द ही उन्हें अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए प्रिंसे ओफ्रम छात्रवृत्ति मिल गयी और वह लंदन में अर्थशास्त्र की पढ़ाई करने चले गए।

लंदन में अम्बेडकर अपने ज्ञान की तृष्णा को बुझाने के लिए और अधिक मेहनत से पढ़ने लगे और अपने विषयों के साथ - साथ और विषयों की भी पढ़ाई करने लगे। यहाँ ब्रिटिश म्यूजियम का पुस्तकालय उनकी मनपसन्द जगह थी जहाँ उन्होंने अपनी ज्ञान की तृष्णा शांत की। अपनी छात्रवृत्ति से मिलने वाले आठ पाउण्ड से बचा कर, भूखे रह कर, वाहन का इस्तेमाल किये बिना पैदल चल कर, और कम कपड़ों में निर्वाह कर के, अम्बेडकर ज्यादा से ज्यादा पुस्तकें खरीदते और पढ़ते थे। यहाँ उन्होंने अपनी दो और थीसिस - 'ब्रिटिश भारत के प्रांतों में उपनिवेशिक वित्त' और 'रुपये की समस्या: इसका मूल और इसका समाधान' को भी पूरा किया। एक वर्ष का समय उन्होंने अर्थशास्त्र पढ़ने के लिए जर्मनी के बून विश्वविद्यालय में बिताया। अम्बेडकर की कुशाग्र बुद्धि और ज्ञान एवं शिक्षा को देख कर लन्दन के कानून स्कूल बार ने उन्हें आमंत्रित किया, जो कि भारत में किसी के लिए एक अपूर्व उपलब्धि थी। इस प्रकार अम्बेडकर न सिर्फ भारत वरन समस्त विश्व के विद्यार्थियों के लिए एक प्रेरणा बने। □



सामाजिक क्रान्ति के पुरोधे महात्मा फूले

□ प्रो. सीताराम व्यास

डटे रहे, हटे नहीं और झुके नहीं।

ऐसे सजग समाज-सुधारक महात्मा फूले के पावन जन्म-दिवस पर उनके जीवन चरित् का अवलोकन करना भी प्रासंगिक होगा। उनका जन्म पूना के निकट खानवाड़ी ग्राम में 11 अप्रैल 1827 ई0 को हुआ। ज्योतिबा फूले एक वर्ष की आयु में माँ के वात्सल्य से वंचित हो गये। पिता गोविन्दराव ने उनका पालन-पोषण किया। उनके पिताजी की फूलों की दुकान थी और वे जाति से माली थे। महाराष्ट्र में माली जाति को अस्पृश्य माना जाता था। ज्योतिराव की प्रारम्भिक शिक्षा मराठी पाठशाला में हुई। तात्कालीन समाज में उच्च-वर्ग को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। बालक ज्योतिराव को अच्छूत मानकर विद्यालय से निकाल दिया गया। इस घटना ने ज्योतिराव के कोमल बाल-मन को गहरा आघत पहुँचाया। पिता का मन भी व्यथित हो गया कि मेरा लड़का शिक्षा से वंचित हो गया। ज्योतिराव पिता के साथ दुकान पर फूल बेचने का काम करने लगे और रात्रि में दीपक के प्रकाश में पढ़ने लगे। ज्योतिराव को रात्रि को पढ़ते देखकर मुंशी गप्फार बेग और ईसाई पादरी लेजित बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने ज्योतिराव का दाखिला मिशन स्कूल में करा दिया। वहाँ पर ज्योतिराव ने वार्षिक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर लोगों को चकित कर दिया। शिक्षा से ज्योतिराव को चिन्तन की नयी दिशा मिली। उनको अनुभव हुआ कि समाज के निचले तबके को शिक्षा के द्वारा अपने अधिकार और कर्तव्य का बोध कराया जा सकता है। छोटे-बड़े के भेद को मिटाने के लिए दलित वर्ग को शिक्षित करना होगा। इससे उनको ज्ञात होगा कि अस्पृश्यता की बीमारी उच्च-वर्ग के दम्भी मन की उपज कुलीनता-ग्रन्थी (Superiority Complex) से ग्रस्त है। अतः दलित वर्ग में आत्मगौरव और स्वावलम्बन का भाव जागृत करना होगा। ज्योतिराव ने महाराष्ट्र के सन्त एकनाथ, ज्ञानेश्वर, नामदेव, सन्त तुकाराम आदि के साहित्य का श्रद्धापूर्वक अध्ययन किया और उनको ज्ञात हुआ कि सब सन्तों ने इन बुराइयों का खण्डन किया है। इन सन्तों ने समाज को

भारत के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी को सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्रान्ति और पुनर्जागरण का काल-खण्ड जाना जाता है। इस शताब्दी में अनेक महान् पुरुषों का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने हिन्दू-समाज में नव-चैतन्य को संचारित करने का स्तुत्य प्रयास किया। इनमें महात्मा ज्योतिबा फूले का सामाजिक विषमता और भेद-भाव के विरुद्ध चलाया गया समता और समरसता का अभियान निश्चय ही ऐतिहासिक महत्त्व का है। उन्होंने एक ज्योति-पुरुष के रूप में अन्धकार में भटकते समाज को सत्य की दिशा में उन्मुख किया। ज्योतिबा प्रथम सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत थे। उनका संघर्ष केवल दलितों के लिए ही नहीं था बल्कि दलितपन को दूर करने के लिये था। उनका सामाजिक-क्रान्ति अधिष्ठान सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय था।

महात्मा फूले क्रान्तिकारी सुधारवादी थे। उनके सामाजिक आन्दोलन ने राष्ट्र-जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया। वे ऐसे पहले सुधारक थे, जिन्होंने समाज के निचले वर्गों में रचनात्मक क्रियाशील की चेतना का संचार किया। महात्मा फूले के समय सवर्ण-शूद्र, छूत-अछूत, ब्राह्मण-अब्राह्मण आदि भेद-भाव समाज की जड़ों को खोखला कर रहे थे। ये सब कुरीतियाँ सामाजिक विषमता को जन्म दे रही थीं। महात्मा फूले ने हिन्दू-समाज की जड़ता और रूढ़ियों पर ही प्रहार ही नहीं किया वरन् उसे उन्होंने उच्च वर्ग के लोगों की सद्बुद्धि और न्याय चेतना को प्रेमपूर्वक उकसाया और उनमें मानवीय समता और ममता की पावन प्रेरणा का संचार किया। वे समाज के दीन-दलित वर्गों, मजदूरों, किसानों, महिलाओं आदि सभी के उच्चवर्णीय व्यक्तियों के द्वारा निर्ममतापूर्वक किये जा रहे शोषण और उत्पीड़न से बेहद चिन्तित और उद्विग्न थे। महात्मा फूले के क्रान्तिकारी सुधारों का महाराष्ट्र में विरोध भी हुआ परन्तु सत्यशोधक ज्योतिबा फूले अविचल साधक की तरह अपने सत्य पर चलते रहे। वे

सारी पृथ्वी अपना परिवार है; यह भाव लेकर हम सभी एकजुट होकर सत्य व्यवहार करें। महात्मा फूले की मूल भूमिका हिन्दू-समाज के सुधार की ही थी। उनका हिन्दू समाज में व्यास पाखण्डों और अन्धविश्वासों से विरोध था। वे ईसाई मन्तातरण के विरोधी थे। उनके ग्रन्थ में उल्लेख है:- “नियन्त्रण में रखें ईसाइयों को। सावधान करें अपने भाईयों को।” वे अपने पत्रों के शीर्ष पर ‘सत्यमेव जयते’ लिखते थे। इस प्रकार महात्मा फूले सम्पूर्ण भारतीय समाज की समग्र क्रान्ति के पुरोधे थे। तथाकथित राजनेता महात्मा फूले और डा.अम्बेडकर के नाम पर वोट की राजनीति कर रहे हैं। यह कार्य देशहित और समाज-हित में नहीं है। न ही इसमें दलितों के प्रति न्याय है।

प्रेम, करुणा, मानवता और ममता का संदेश दिया है। ज्योतिबा को सात्विक विचारों की यह निधि संस्कृत के 'वज्रसूची' ग्रन्थ व कबीर के बीजक ग्रन्थ के 'विप्रमति' भाग से मिली थी।

सहसा ज्योतिराव के जीवन में एक हृदयविदारक घटना घटित हुई। एक बार ज्योतिराव को ब्राह्मण मित्र ने अपने विवाह में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। वे सहज भाव से विवाह-स्थल पर गये। वहाँ पर उनको अपमानित किया गया। वे खिन्न मन से लौट आये। उस दिन उनको समाज के वंचित वर्ग की दयनीय और दुःखद दशा का साक्षात्कार हुआ। इस घटना ने ज्योतिबा को महात्मा फूले बना दिया। उनको अनुभूति हुई कि दलित वर्ग अपने जीने के अधिकार को भी भूल बैठा है। महात्मा फूले ने संकल्प किया कि मैं अपने वंचित-वर्ग को सुशिक्षित

करके इनमें आत्मनिर्भरता और अस्मिता बोध की चेतना जगाऊँगा। शिक्षा ही समाज में परिवर्तन लाने का प्रभावशाली माध्यम है। शिक्षा वह समर्थ साधन है, जो समाज में मूक क्रान्ति सहज ढंग से ला सकता है। उन्होंने एक स्थान पर विचार प्रगट किया

विद्या बिना मति गयी।

मति बिना नीति गयी।

नीति बिना गति गयी।

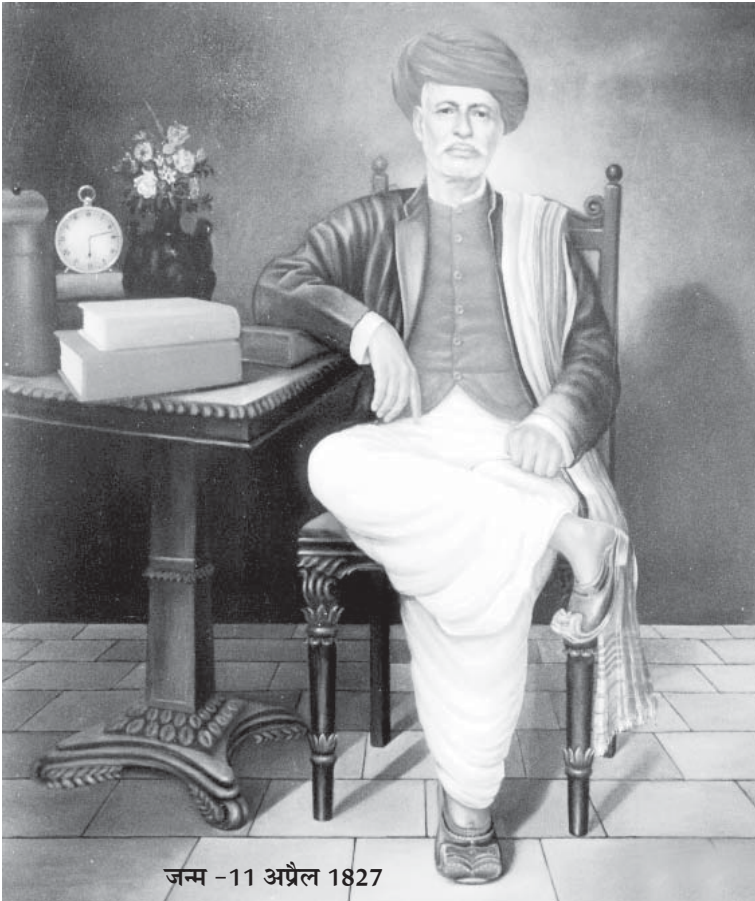
गति बिना वित्त गया।

वित्त बिना शुद्ध हुआ।

उनका आशय था कि शिक्षा के द्वारा ही दलित वर्ग में जागृति लाई जा सकती है। ज्योतिबा ने शिक्षा प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण सूत्र भी ढूँढ निकाला। समाज में क्रान्तिकारी सुधारों के लिए सर्वप्रथम स्त्रियों को शिक्षा देने की व्यवस्था करनी चाहिये। ज्योतिबा का यह विचार स्वामी विवेकानन्द

के कथन से पुष्ट होता है "एक आदमी पढ़ता है, तो एक व्यक्ति शिक्षित होता है, परन्तु एक स्त्री शिक्षित होती है तो सारा परिवार शिक्षित होता है।" ज्योतिबा ने सन् 1848 में पुणे के भिड़े वाड़े में वंचित वर्ग की लड़कियों की शिक्षा के लिए तत्काल पाठशाला का श्रीगणेश कर दिया। शिक्षा-क्षेत्र में क्रियाशील महात्मा फूले प्रथम ब्राह्मणेतर भारतीय थे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस पुनीत कार्य में उच्चवर्गीय मित्रों का भी सहयोग प्राप्त हुआ। इनमें उनके सहकारी पराञ्जपे, गोविन्द साठे, सदाशिव गोवण्डे इत्यादि मित्रगण सम्मिलित थे। पुरातन पंथी लोगों ने ज्योतिबा के कार्य का विरोध किया परन्तु ज्योतिबा विचलित नहीं हुए। ज्योतिबा की धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री बाई ने संकटों के बावजूद अध्यापिका के दायित्व को धैर्य के साथ निभाया। ज्योतिबा के पिता को पोंगा पंडितों ने सामाजिक बहिष्कार की धमकी दी। अनबन बढ़ जाने पर अन्ततः उन्हें घर छोड़ना पड़ा। एक बार तो विद्यालय भी बन्द हो गया। ध्येयव्रती ज्योतिबा ने पुनः चिपलूणकर बाड़े में लड़कियों का विद्यालय खोल दिया। धीरे-धीरे समाज के उदार दानी बन्धुओं तथा ब्राह्मण सहकर्मियों के सहयोग से शिक्षा कार्य में गतिशीलता आ गयी। इससे दलित वर्ग में नवीन उत्साह का संचार हुआ।

नारी जागरण के लक्ष्य को लेकर महात्मा फूले ने नारी-जाति को कुरीतियों से मुक्त करने का उपक्रम किया। उन्होंने दलित वर्ग की स्त्रियों को कुशल शिक्षिका बनाने का प्रशिक्षण कार्य प्रारम्भ किया। ज्योतिबा की दृष्टि में लड़कियों से सहमति प्राप्त करके ही विवाह-सम्बन्ध निश्चित किया जाना चाहिये। महात्मा फूले का समाज सुधार का कार्य दलित वर्ग तक ही सीमित नहीं था, वरन् सम्पूर्ण हिन्दू समाज में विधवा महिलाओं की दारुण दशा, भ्रूणहत्या, बालविधवाओं की दुर्गति जैसी कुरीतियों को दूर करने का प्रयास भी शामिल था। उन्होंने शैव जाति की एक विधवा का विवाह भी



जन्म - 11 अप्रैल 1827

करवाया। उनकी पत्नी सावित्री बाई ने एक ब्राह्मण विधवा के बालक को 'यशवन्त' नाम दिया और उसका अपने बच्चे की तरह पालन-पोषण किया। इस प्रकार समस्त हिन्दू-समाज महात्मा फूले के सुधार-आन्दोलन की परिधि में सम्मिलित था। उनका ब्राह्मण वर्ग के प्रति कटुता का भाव नहीं था। उनकी नाराजगी ब्राह्मणी-शोषण वृत्ति से थी। इस विषय में माधवराव बागल कहते हैं "जिस प्रकार महात्मा गांधी ब्रिटिश सम्राज्य के द्वेष थे, अंग्रेजों के प्रति द्वेष नहीं थे, उसी तरह महात्मा फूले ब्राह्मणी-वृत्ति के प्रति द्वेष थे, उनकी घृणा अन्याय को लेकर थी।"

ज्योतिबा ने 24 सितम्बर 1873 को सत्यशोधक समाज की स्थापना की। सत्यशोधक समाज का उद्देश्य समाज को समरस और संगठित करके सत्य के पथ पर ले जाना था। सभी जाति, मत, पन्थ,

सम्प्रदायों के व्यक्ति सत्यशोधक समाज के सदस्य बन सकते थे। यह एक सामाजिक रूपान्तरण का क्रान्तिकारी आन्दोलन था। इसकी प्रसिद्धी पूरे देश में फैली। ज्योतिबा ने अपने जीवन के अन्तिम काल में 'सार्वजनिक सत्य धर्म' ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में महात्मा फूले ने राष्ट्र-सुधार पर प्रकाश डाला है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है:-

"देश सुधार का अहोरात्र है ध्यान, कर माँग भाटो की एकता, करे समता निर्माण।" सारी पृथ्वी अपना परिवार है; यह भाव लेकर हम सभी एकजुट होकर सत्य व्यवहार करें। महात्मा फूले की मूल भूमिका हिन्दू-समाज के सुधार की ही थी। उनका हिन्दू समाज में व्याप्त पाखण्डों और अन्धविश्वासों से विरोध था। वे ईसाई मन्तव्य के विरोधी थे। उनके ग्रन्थ में उल्लेख है:-

"नियन्त्रण में रखें ईसाइयों को। सावधान करें अपने भाईयों को।।"

वे अपने पत्रों के शीर्ष पर 'सत्यमेव जयते' लिखते थे। इस प्रकार महात्मा फूले सम्पूर्ण भारतीय समाज की समग्र क्रान्ति के पुरोधा थे। तथाकथित राजनेता महात्मा फूले और डा.अम्बेडकर के नाम पर वोट की राजनीति कर रहे हैं। यह कार्य देशहित और समाज-हित में नहीं है। न ही इसमें दलितों के प्रति न्याय है। आज भी महात्मा फूले के उद्बोधक विचार सम्पूर्ण भारतीय समाज में समरसता, एकजुटता, न्याय, समानता की पावन प्रेरणा का संचार करने की क्षमता से युक्त होने के कारण नितान्त प्रासंगिक हैं। आओ, हम सब भारतवासी उनके पावन जन्म दिवस पर उनके बताये गए सत्यपथ पर चलने का प्रण और उनके विचारों को अपने जीवन में आचरित करने का निश्चय करें। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। □

(सेवानिवृत्त प्राध्यापक, शिक्षा एवं सामाजिक क्षेत्र के अध्येता)

Now in CBSE: Law, theatre studies

Come 2014-15 and your child could pick theatre, legal studies or gender studies as an elective, in a departure from run-of-the-mill courses. The Central Board of Secondary Education (CBSE) is offering the subjects at the Class XI-XII level following a pilot run in select schools last year.

Among other subjects available are NCC, human rights and a unique "Knowledge Traditions and Practices of India" which combines various disciplines. The courses will set out an overview of the subject, along with the historical and current context.

For middle school, the board is offering Chinese, the pilot run of which is under way at present. The first batch will appear for their board exams in these subjects in March 2015.

NEW LESSONS

Electives on offer from 2014-15: theatre, law studies, gender studies, NCC, human rights, knowledge traditions

Courses offered from Class XI-

XII level, first batch to appear for exams in 2015

Electives offered with a combination of three other electives and a language Human rights and gender studies to raise awareness

"Theatre studies is now going to be offered in all schools after their pilot run on first-come-first-served basis in 2013-14. Theatre can also play an important role in reinforcing and furthering the learning of other academic subjects which are taught in conventional ways," said CBSE chairman Vineet Joshi. "It concretizes issues that would otherwise remain abstract and difficult for children to grasp. It puts life back into bookish learning."

Legal studies is also bound to appeal to a lot of students, especially those considering the five-year integrated law course. "The board wants to give a competitive edge to students who wish to prepare for a career in law. Prior to opting for law in higher studies, students will get an idea about

the subject and their own aptitude. Based on the response during our pilot run, we are extending the option to all schools," said Joshi.

The course will include theory and nature of political institutions, nature and sources of law, historical evolution of Indian legal system, civil and criminal courts and processes, family justice system, arbitration, tribunal adjudication and alternate dispute resolution, human rights in India, the international context and an overview of the profession.

Human rights and gender studies have been received well in the pilot run in 50 schools. The objective of the subject is "create awareness about law, administration of justice, need for equality of opportunity and an understanding of gender and division of labour," said Joshi. Each of these will be offered with a combination of three other electives and a language.

निचले पायदान पर लटकी उच्च शिक्षा

□ डॉ. विशेष गुमा



भारत के आईआईएम जैसे श्रेष्ठ प्रबंधन संस्थानों तक की कोई श्रेणी निर्धारित नहीं की गई है। यहां खास बात यह है कि चीन, जापान फ्रांस, फिनलैंड, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया, थाइलैंड, इस्त्राइल व ताइवान जैसे छोटे देश उच्च शिक्षा के इस अन्तरराष्ट्रीय बेंचमार्क में भारत से काफी आगे निकल गये। परन्तु आईआईटी जैसे संस्थानों की अन्तरराष्ट्रीय रैंकिंग लगातार नीचे गिरना निश्चित ही गंभीर चिंता का विषय है।

देश के उच्च शिक्षण संस्थान विश्व स्तर पर एक बार फिर फिसड्डी साबित हुए हैं?

लंदन में हाल ही में जारी टाइम्स हायर एजुकेशन (टीएचई) मैगजीन की वर्ल्ड रेपुटेशन रैंकिंग्स से जुड़ी - 2014 की सूची में इस बार भी विश्व के 100 श्रेष्ठ उच्च शिक्षण संस्थानों में भारत का कोई स्थान नहीं है। इस संस्था ने शोध की गुणवत्ता, स्नातक स्तर पर रोजगार के अवसरों की उपलब्धता, वैश्विक स्तर पर शिक्षा, विषयवस्तु व शिक्षण प्रतिबद्धता तथा संस्था की अन्तरराष्ट्रीय साख जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विश्व के वरिष्ठ शिक्षाविदों के मतों के आधार पर उच्च शिक्षण संस्थाओं का अकादमिक सर्वे किया है।

कहने की जरूरत नहीं कि अमेरिका का हार्वर्ड विवि इस रैंकिंग में आज भी पहले स्थान पर है। इस सूची में अमेरिका का ही मैसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एमआईटी) दूसरे, स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी तीसरे, ब्रिटेन की कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी चौथे, ऑक्सफोर्ड पांचवें तथा यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया बर्कले छठे स्थान पर रही है। इस साल भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विश्व स्तर की इस रैंकिंग में अमेरिका और इंग्लैंड की ही शिक्षण संस्थाओं ने बाजी मारी है। रैंकिंग रिपोर्ट खुलासा करती है कि येले, यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लंदन, इम्पीरियल कॉलेज ऑफ लंदन, शिकागो विश्वविद्यालय जैसी संस्थाएं विश्व स्तर पर आज भी अपनी साख बनाए हैं।

दूसरी ओर यह रैंकिंग रिपोर्ट खुलासा करती है कि भारत ब्रिक्स यानि ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में भारत अकेला ऐसा देश है जो विकासशील आर्थिक ताकतों में शामिल है। परन्तु चिंता की बात है कि उसका एक भी विश्वविद्यालय दुनिया के 225 शीर्ष विश्वविद्यालयों तक में शामिल नहीं है। हां, देश की पंजाब यूनिवर्सिटी ने जरूर गौर वरीयता सूची में 226 से 300 के बीच की रैंकिंग पाई है। ज्ञात हो कि इसमें आईआईटी दिल्ली,

मुंबई, कानपुर, मद्रास तथा आईआईटी रुड़की व खड़गपुर को 351 से 400 के बीच की रैंक पर संतोष करना पड़ा है। भारत जिस चीन को अपना निकट का प्रतिसपर्द्धी मानता है, उसके दुनिया के शीर्ष 50 संस्थानों में दो संस्थाओं को स्थान मिला है। रूस और ब्राजील का भी एक-एक विश्वविद्यालय इस सूची में जगह बनाने में सफल रहे हैं।

भारत के आईआईएम जैसे श्रेष्ठ प्रबंधन संस्थानों तक की कोई श्रेणी निर्धारित नहीं की गई है। यहां खास बात यह है कि चीन, जापान फ्रांस, फिनलैंड, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया, थाइलैंड, इस्त्राइल व ताइवान जैसे छोटे देश उच्च शिक्षा के इस अन्तरराष्ट्रीय बेंचमार्क में भारत से काफी आगे निकल गये। परन्तु आईआईटी जैसे संस्थानों की अन्तरराष्ट्रीय रैंकिंग लगातार नीचे गिरना निश्चित ही गंभीर चिंता का विषय है।

सच यह है कि विगत चार-पांच वर्षों से विदेशी विश्वविद्यालय अपने शैक्षिक बाजार व नौकरीयुक्त ढांचे को उच्च रैंकिंग में रखकर अपनी ब्रांडिंग हमसे अच्छी कर रहे हैं। तभी उनसे जुड़ी रैंकिंग प्रदान करने वाली संस्थाएं भी अपने ब्रांड को श्रेष्ठ बताकर विकासशील देशों में प्रस्तुत कर रही हैं। परन्तु हम अपनी उच्च शिक्षा के मानकों में अन्तरराष्ट्रीय बेंच मार्क से लगातार पिछड़ रहे हैं। इसी के बरक्स कहना न होगा कि भारत विश्व में उच्चशिक्षा का अकादमिक हब बन रहा है। वह अपनी शैक्षिक श्रेष्ठता के बलबूते अन्तरराष्ट्रीय आउटसोर्सिंग बाजार का सबसे बड़ा हिस्सेदार है। भारत का यह बाजार विश्व के कई विकसित देशों को चुनौती दे रहा है। भारत की इस चुनौती से अमेरिका काफी चिंतित है। परन्तु सवाल है कि फिर ऐसा क्या है कि भारत की उच्च शिक्षण संस्थाओं को विश्व स्तर पर कमतर आंकने की कोशिश हो जा रही है।

दरअसल देश में उच्च शिक्षा से जुड़ा सच यह है कि भारत में उच्च शिक्षा का विकास समान आधार पर नहीं हुआ। इसके सर्वोच्च शिखर पर

आईआईटी, आईआईएम, एम्स व केन्द्रीय विश्वविद्यालय जैसी लगभग दो सौ संस्थाएं हैं जिनमें बमुश्किल एक लाख छात्र प्रवेश पाते हैं। दूसरी ओर निचले पायदान पर तीन सौ राज्य विश्वविद्यालय और लगभग बीस हजार से अधिक कॉलेज हैं जिनमें डेढ़ करोड़ के लगभग छात्र पढ़ते हैं। इसके मध्य डीम्ड विश्वविद्यालय हैं जिनमें कुछेक को छोड़कर शेष औसत अथवा निम्न स्तरीय श्रेणीक्रम में रखने योग्य हैं।

अन्त वें स्ववित्त पोषित संस्थाएं हैं जिन्होंने उच्च शिक्षा की गुणवत्ता की परवाह किये बिना स्वयं को एक बड़े बाजार के रूप में विकसित कर लिया है। गुणवत्ता की परवाह किये बिना कस्बे व गांव-गांव में महाविद्यालय और नगरों में विश्वविद्यालय खोल दिये गये। सही मायनों में इन संस्थाओं ने प्रवेश की पात्रता को ध्वस्त करते हुए उच्च शिक्षा के स्तर को कमजोर ही किया है।

इसी कारण राष्ट्रीय उच्च शिक्षा मूल्यांकन परिषद ने भी अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट में स्पष्ट कर दिया है कि भारत में 68 प्रतिशत विश्वविद्यालयों और 90 प्रतिशत कालेजों में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता या तो मध्यम दर्जे की है या दोषपूर्ण है। इन संस्थाओं के 75 प्रतिशत डिग्रीधारी छात्र बेरोजगार हैं। योजना आयोग की रिपोर्ट भी खुलासा करती है कि देश के 60 प्रतिशत विश्वविद्यालयों और 80 प्रतिशत कालेजों से निकले छात्रों के पास न कौशल है और न भाषा दक्षता। यही कारण है कि ऐसे छात्र उचित रोजगार के लायक नहीं हैं। देश की उच्च शिक्षा का कड़वा सच यह है कि इसके कुल बजट का 90 प्रतिशत भाग शिक्षकों के वेतन में ही खप जाता है। इसके बावजूद शिक्षक की ज्ञान से जुड़ी छवि लगातार कमजोर पड़ रही है। साथ ही पाठ्यक्रम, ज्ञान, कौशल और परीक्षा पद्धति भी कुछ नया कर पाने में असमर्थ है। असल में उच्च शिक्षा के यही वे मानक हैं जिनसे उच्च शिक्षा की



अन्तरराष्ट्रीय रैंकिंग का निर्धारण होता है और इन्हीं मानकों पर हम लगातार कमजोर पड़ रहे हैं।

विकसित देश आज भारत को उच्च शिक्षा के विशाल बाजार के रूप में देख रहे हैं। भारत की स्थिति यह है कि यहां मात्र 12 प्रतिशत छात्र ही उच्च शिक्षा पाते हैं तथा तीन लाख से भी अधिक छात्र उच्च शिक्षा के लिए ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी और आस्ट्रेलिया जाते हैं। यानी भारत का बहुत बड़ा हिस्सा उच्च शिक्षा से अछूता है। विकसित देशों की एजेंसियां यह सच बखूबी जानती हैं कि आगामी दशकों में दुनिया में उच्च शिक्षा से जुड़े अभ्यर्थियों की जो संख्या बढ़ेगी उसमें अधिकांश हिस्सा भारत जैसे विकासशील देश का ही होगा। इतनी बड़ी संख्या में युवाओं को विश्वस्तरीय उच्च शिक्षा उपलब्ध कराना भारत सरकार के अकेले बस की बात नहीं है। शायद यही कारण है कि भारत सरकार देश में विश्वस्तरीय उच्च शिक्षा के विस्तार के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों को आमंत्रित करने को मजबूर है। परिणामतः इस समय विश्व स्तर पर अमेरिका, ब्रिटेन, जापान व जर्मनी जैसे देश अपने उच्च शिक्षण संस्थानों की अन्तरराष्ट्रीय ब्रांडिंग तेजी से कर रहे हैं।

असल मुद्दा यह है कि हम विदेशी विश्वविद्यालयों के पीछे क्यों भाग रहे हैं?

क्यों अपनी उच्च शिक्षण संस्थाओं में विश्व स्तर के ढांचागत विकास से कतराते हैं? दरअसल हम अपनी संस्थाओं के लचर ढांचे से अच्छी तरह वाकिफ हैं। तमाम दावों के बावजूद देश में शिक्षा का कुल बजट जीडीपी का मात्र 4 प्रतिशत के आस-पास पहुंच पाया है। इसमें भी उच्च शिक्षा से जुड़ा तो मात्र एक ही प्रतिशत है। साठ के दशक में कोठारी कमीशन ने शिक्षा के लिए कम से कम छह प्रतिशत बजट मुहैया कराने की बात कही थी, लेकिन बजट छोड़िए, तमाम विश्वविद्यालयों व तकनीकी संस्थानों में 30 से 40 प्रतिशत तक फैकल्टी के पद खाली पड़े हैं।

विश्व स्तर पर भारत की उच्च शिक्षा की रैंकिंग पर निःसंदेह प्रश्नचिह्न लग रहे हैं। यह देश की उच्च शिक्षा के मूल्यांकन का समय है। सही मायनों में हमें राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप उच्च शिक्षा के ढांचे को वैश्विक स्वरूप प्रदान करना होगा। अंतरराष्ट्रीय ब्रांडिंग के नाम पर जो प्रायोजित संस्थाएं अपने यहां उच्च शिक्षा का बाजार तलाश रही हैं, उनसे सावधान रहना होगा। अपनी संस्थाओं को वैश्विक फलक पर परचम लहराने के लिए ढांचागत व शोध श्रेष्ठता वाला माहौल तैयार करना ही पड़ेगा। □

(समाज शास्त्र के प्राध्यापक)

शोध प्रबन्धों का गिरता स्तर

□ डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल



भारतीय विश्वविद्यालयों में रिसर्च का गिरता स्तर निश्चय ही चिंताजनक है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति का मार्ग एकेडेमिक रिसर्च से ही प्रशस्त होता है और उसमें विश्वविद्यालयों में होने वाले रिसर्च की भूमिका प्रमुख होती है। यदि आज विश्व में ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, येल आदि विश्वविद्यालयों का नाम बड़े आदर से लिया जाता है तो उसका कारण वहाँ होने वाली शोध का उच्च स्तर ही है। स्मरणीय है कि अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय (बर्कले) में कार्य करते हुये ही महान रसायनज्ञ जी.टी. सीबोर्ग ने दस ट्रांसयूरेनिक तत्वों की खोज की थी और 1951 में रसायन शास्त्र के नोबेल पुरस्कार से नवाजे गये थे। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्यसेन ने भी अपना सारा ही शोध कार्य विश्वविद्यालयों में ही किया।

अभी कुछ समय पूर्व एक समाचार पढ़ने को मिला था कि मेघालय के एक निजी विश्वविद्यालय को पी.एच.डी. की नकली डिग्री के धंधे में लिप्त पाया गया। चार सौ ऐसी डिग्रियां बेची जा चुकी थी और चार सौ के लगभग ही विद्यार्थियों को ऐसी डिग्री के लिये पंजीकृत किया जा चुका था। यद्यपि समाचार में 'नकली डिग्री' को परिभाषित नहीं किया गया था, परन्तु समझा जा सकता है। बिना मौलिक काम किये ही कुछ पुराने स्तरीय शोध प्रबंधों से सामग्री उठा कर एक नया प्रबंध तैयार कर लेना और फिर उसके आधार पर रिसर्च डिग्री प्राप्त कर लेना। कभी कभी तो पुराना प्रबंध पूरा का पूरा ही उड़ा लिया जाता है और अपने नाम से जमा कर दिया जाता है। स्पष्ट है कि ऐसे प्रबंधों के प्रकाशन को (अथवा विज्ञान विषयों में पुरानी सामग्री के आधार पर शोध पत्रों का प्रकाशन) प्रश्न ही नहीं उठता। कहना न होगा कि इसे समस्त प्रक्रिया में प्रोफेसर, विश्वविद्यालय कार्यालय के कर्मचारी आदि सभी लिप्त रहते हैं और यथोचित स्तर पर धन का आदान-प्रदान तो होता ही है। मेघालय में उक्त विश्वविद्यालय में भी तीन वरिष्ठ प्रोफेसरों को आरोपित किया गया और उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया गया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी पूरी जांच पड़ताल के लिये इनक्वायरी कमेटी का गठन कर दिया यद्यपि उसकी रपट की सूचना अभी तक लेखक को प्राप्त नहीं हो सकी है।

भारतीय विश्वविद्यालयों में रिसर्च का गिरता स्तर निश्चय ही चिंताजनक है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति का मार्ग एकेडेमिक रिसर्च से ही प्रशस्त होता है और उसमें विश्वविद्यालयों में होने वाले रिसर्च की भूमिका प्रमुख होती है। यदि आज विश्व में ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, येल आदि विश्वविद्यालयों का नाम बड़े आदर से लिया जाता है तो उसका कारण वहाँ होने वाली शोध का

उच्च स्तर ही है। स्मरणीय है कि अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय (बर्कले) में कार्य करते हुये ही महान रसायनज्ञ जी.टी. सीबोर्ग ने दस ट्रांसयूरेनिक तत्वों की खोज की थी और 1951 में रसायन शास्त्र के नोबेल पुरस्कार से नवाजे गये थे। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्यसेन ने भी अपना सारा ही शोध कार्य विश्वविद्यालयों में ही किया।

भारत के विश्वविद्यालयों में शोध के गिरते स्तर के कई कारण हैं परन्तु सबसे बड़ा कारण है उच्च शिक्षा का बाजारीकरण। बढ़ते वेतनमान के साथ नौकरियों के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण जन साधारण में उच्च शिक्षा की उत्कट आकांक्षा जन्म ले चुकी है। इसी चाह को भुनाने के लिये अब निजी विश्वविद्यालय धड़ाधड़ खुलते जा रहे हैं। स्पष्ट है कि इन्हें शिक्षा और शोध के गुणात्मक स्तर से कोई मतलब नहीं है। वे तो केवल यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि उनके यहाँ बहुत अधिक कार्य हो रहा है। यह इसलिये कि प्रभावित हो कर अधिक विद्यार्थी उनके यहाँ प्रवेश करें और खुशी खुशी लंबी चौड़ी फीस दें। इस संबंध में मेरे अपने अनुभव हैं। ऐसे एक विश्वविद्यालय में कार्यरत मेरे एक मित्र ने बताया कि उनके कुलपति सभी प्राध्यापकों पर बराबर जोर देते रहते हैं कि वे शोध कार्य अधिक से अधिक करें। उन्हें इस बात से कोई मतलब न था कि अच्छी शोध के लिये एक विशिष्ट मानसिकता की एवं कम से कम विज्ञान में पूरी तरह सुसज्जित विभिन्न प्रकार की प्रयोगशालाओं की आवश्यकता पड़ती है। इसी सोच के चलते ऐसे कुलपतियों को इस बात की भी कोई चिंता नहीं होती कि शोध प्रबंध के परीक्षक किस प्रकार के नियुक्त किये जाए। ऐसे ही एक वि.वि. से एक बार मुझे तीन प्रबंध एक साथ भेज दिये गये और जब मैंने फोन पर बात की कि उनमें से एक भी मेरे विशेषज्ञता क्षेत्र से संबंधित नहीं था, तो मुझसे आग्रह किया गया कि मैं उन्हें किसी प्रकार 'निपटा' ही दूँ, जो करने में मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की।

परीक्षकों के संबंध में यह ढीला-ढाला दृष्टिकोण सरकारी वि.वि. में भी घर करता जा रहा है। वहाँ शोध प्रबंध के परीक्षक होने की ललक ने आपसी जान पहचान को आधार बना दिया है। स्वाभाविक है कि स्तर तो गिरेगा ही। पहले एक परम्परा थी कि प्रबंध का एक परीक्षक विदेशी होना अनिवार्य था। इस परम्परा की अंत्येष्टि के बाद यह जान-पहचानवाद बेलगाम हो कर बढ़ा और शोध के गुणात्मक स्वर में भयंकर गिरावट आ गई।

गिरावट के लिये और भी कारक उत्तरदायी हैं। कुछ समय पहले तक प्रमोशन के लिये अच्छे स्तर के और वह भी अच्छी मात्रा में शोध आवश्यक समझा जाता था। अब ऐसा नहीं है। अब तो 'आटोमेटिक प्रमोशन' की प्रथा चल पड़ी है। इस पद्धति में प्रत्याशी के अकादमिक कार्यों की सीमित

सी जांच पड़ताल की जाती है। 'प्रोफेसर' जैसे गरिमामय पद पर प्रमोशन के लिये केवल पांच शोध पत्रों का प्रकाशन ही आवश्यक समझा जाता है। इसके लिये साधारणतः यह भी नहीं देखा जाता कि वे जिन जर्नलों में प्रकाशित हुये हैं- उनका स्तर क्या है। मसलन, विशेष कर विज्ञान के क्षेत्र में, क्या वह जर्नल अंतर्राष्ट्रीय स्तर का है अथवा उसमें प्रकाशित शोध पत्र अन्य जर्नलों में औसत किस संख्या में संदर्भित होते रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वभाविक ही था कि अधकचरे, निम्नस्तरीय जर्नलों की बाढ़ सी आ जाती जो केवल लेखक से प्रकाशन फीस के नाम पर ऊँची रकम मांग कर अपना भला करते हों। प्रख्यात जर्नल 'साइंस' (अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल) के वर्ष 2013 के अंक में स्पष्ट रूप से कहा भी गया है कि भारतवर्ष में 'फेक (Fake) जर्नलों की बाढ़ सी आ गई है।'

प्रोफेसर से नीचे के स्तर पर प्रमोशन के लिये तो केवल कुछ सेमिनार/ रीफ्रेश कोर्स आदि में सम्मिलित होना ही यथेष्ट समझा जाता है। इन के लिये कोष भी अपेक्षाकृत सरलता से उपलब्ध है। इसीलिये इनकी संख्या में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है यद्यपि कोष उपलब्ध कराने वाली एजेंसियां, जैसे UGC, CSIR आदि इस तथ्य को ज्ञात करने का कष्ट नहीं उठाती

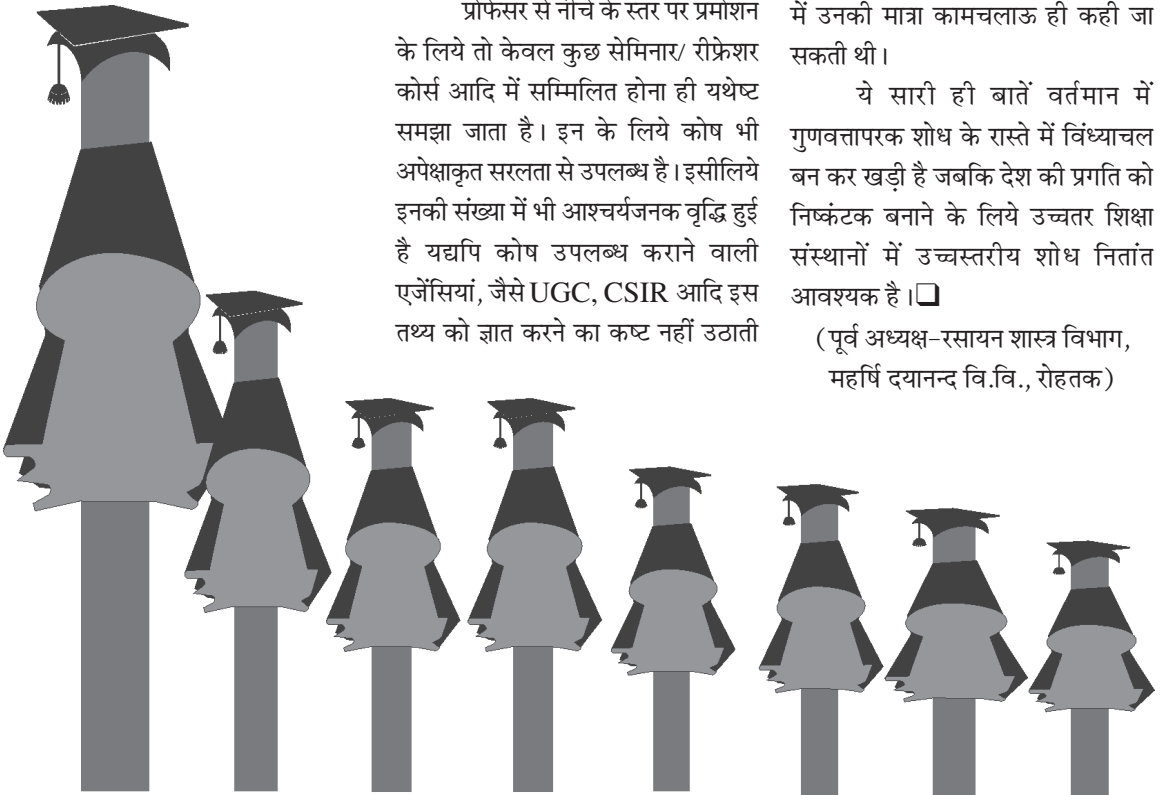
कि उनका स्तर कैसा रहा था।

रिसर्च डिग्री प्राप्त हो जाने के पश्चात नियुक्ति के समय प्रार्थी के शोध की गुणवत्ता पर नहीं के बराबर ध्यान दिया जाता है। नियुक्ति के लिये अधिकतर संस्थानों में केवल डिग्री का होना ही बहुधा पर्याप्त समझा जाता है। कह सकते हैं कि नौकरी के बाजार में अंततः सब धान बाइस पसेरी ही ठहरता है और यह अच्छी शोध के लिये अनुत्साहित करने वाला सिद्ध होता है।

अच्छी स्तरीय शोध के लिये एक भरा पूरा उच्चकोटि का पुस्तकालय एवं विज्ञान के लिये तो सुसज्जित प्रयोगशालाओं की भी आवश्यकता पड़ती है यद्यपि इनके लिये समुचित मात्रा में कोष उपलब्ध नहीं हो पाते। राजस्थान के उच्चतर शिक्षा संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों के एक ताजे सर्वे में यह तथ्य सामने आया कि आधों में तो शोध के लिये कोष उपलब्ध थे ही नहीं तथा शेष में उनकी मात्रा कामचलाऊ ही कही जा सकती थी।

ये सारी ही बातें वर्तमान में गुणवत्तापरक शोध के रास्ते में विंध्याचल बन कर खड़ी है जबकि देश की प्रगति को निष्कटक बनाने के लिये उच्चतर शिक्षा संस्थानों में उच्चस्तरीय शोध नितांत आवश्यक है। □

(पूर्व अध्यक्ष-रसायन शास्त्र विभाग,
महर्षि दयानन्द वि.वि., रोहतक)



शिक्षा का स्वरूप क्या हो?

□ गोकुल चन्द गोयल



शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का साधन है। शिक्षा बिना मनुष्य निरा पशु समान है। शिक्षा ही मनुष्य को संस्कारित कर स्वयं, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं सम्पूर्ण मानवता ही नहीं प्राणी मात्र तथा चर अचर जगत के लिए एक उपयोगी जीवन जीने का अवसर प्रदान करती है। शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है।

किन्तु प्रश्न यह है कि शिक्षा क्या है तथा उसका स्वरूप क्या हो? क्या अक्षर ज्ञान, पुस्तकीय ज्ञान, विषय-विशेषज्ञता आदि मात्र ही शिक्षा के सोपान हैं अथवा उसमें चरित्र, नैतिकता, प्रामाणिकता, प्राणी मात्र के लिए दया, प्रेम, करुणा, परोपकार आदि संस्कारों का भी स्थान है। वास्तव में उक्त संस्कारों से विहीन ज्ञान तो वैसा ही है जैसा रावण को समस्त वेदों का ज्ञान था, किन्तु सीता माता के अपहरण के साथ-साथ सज्जनों व देवों को कष्ट देने की वृत्ति के कारण ऋषिकुल में उत्पन्न वह महान ज्ञानी भी सम्मान का पात्र नहीं बन सका। अतः शिक्षा में संस्कारों नैतिकता व चरित्र आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। एक निरक्षर व्यक्ति भी बड़े से बड़े तथा कथित शिक्षित विषय विशेषज्ञ की तुलना में शिक्षित माना जा सकता है। भारतीय ग्रामीण कृषक एवं अन्य जन अनुभव व व्यवहार से विश्वविद्यालय में शिक्षित से अधिक शिक्षित अर्थात् सीखे हुए होते हैं यद्यपि वे साक्षर व पुस्तकीय विद्वता धारक नहीं होते। तथापि श्रेष्ठ ज्ञान द्वारा श्रेष्ठ संस्कार प्राप्त करने की विधि को नकारा नहीं जा सकता। आदिकाल से लेकर आज तक समय-समय पर समाज व राष्ट्र की आवश्यकतानुसार शिक्षा के विभिन्न स्वरूप रहे हैं। स्वतंत्र भारत ने अंग्रेजों के जाने के बाद शिक्षा के स्वरूप निर्धारण के अनेक प्रयोग किए गए। अनेक आयोग बिटाए, उनकी संसुतियाँ आई किन्तु दुर्भाग्य यह रहा कि स्वतंत्रता प्राप्त के बाद से ही शिक्षा व्यवस्था का दायित्व जिन लोगों के हाथों में रहा उन्होंने शिक्षा की भारतीय आवश्यकताओं को कभी नहीं समझा

और शुरू से ही अंग्रेजी विद्वान मैकाले की शिक्षा व्यवस्था को ही अदल-बदल कर चलाते रहे जिसने शिक्षा को भारतीयता से विलग कर काले अंग्रेज व बाबू बनाने का ही काम किया था। 68 वर्ष बाद भी हम शिक्षा का स्वरूप पूर्व प्राथमिक व प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक सुनिश्चित नहीं कर पाए। हमने कंबल डिग्रियाँ बाँटी। फलतः आज की शिक्षा संस्थाओं से शिक्षित बालक व युवक प्रायः दिग्भ्रमित, निराश, अनुशासनहीन, संस्कारहीन, दिशाहीन, मानसिक व शारीरिक रूप से निर्बल दिखाई देते हैं। उनके सामने जीवन का कोई स्पष्ट उद्देश्य व आदर्श नहीं है। शिक्षा पर किया जा रहा भारी भव्य विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों को संख्यात्मक विस्तार तो दे रहा है किन्तु गुणात्मक विस्तार की दृष्टि से स्थिति निराशाजनक ही है। वर्तमान में इन शिक्षा संस्थाओं से निकला युवक केवल सूचनाओं की शिक्षा का आगार मात्र है, जो वर्ष भर मस्ती व अनुशासनहीनता करते हुए परीक्षा से कुछ समय पूर्व पास बुकों, नोट बुकों आदि अथवा ट्यूशनस के सहारे परीक्षा उत्तीर्ण कर उपाधि तो प्राप्त कर लेता है किन्तु जीवन के अनुभवों से शून्य रहता है। इसमें उस युवा एवं विद्यार्थी वर्ग का दोष न होकर आज की शिक्षा व्यवस्था, शिक्षक, अभिभावक, समाज, सरकार, जनप्रतिनिधि, राजनेता आदि सभी समान रूप से उत्तरदायी हैं। शिक्षा का प्रसार अनियोजित एवं अव्यवहारिक ढंग से किया जा रहा है जो बढ़ती हुई बेकारी के रूप में युवा वर्ग को जीवन की सार्थकता से ही विमुख करता जा रहा है। अभियांत्रिकी एवं चिकित्सा उपाधियों की भी जो स्थिति बनती जा रही है वह चिंता जनक है। राजस्थान प्रदेश में अनावश्यक रूप से अभियांत्रिकी सहित अन्य महाविद्यालयों (बी.एड. आदि) की प्रतिवर्ष बढ़ती संख्या ने इस विधा के स्तर व महत्व को ही समाप्त कर दिया है। शिक्षा न व्यवसाय से जुड़ी और न ही जीवन के उदात्त लक्ष्यों से। महात्मा गांधी की नैतिकता एवं व्यवसाय आधारित शिक्षा को हमने सर्वथा तिलांजली दे दी। स्वदेशी का भाव विलुप्त



बालकों की आयु, स्वास्थ्य, मानसिक व शारीरिक स्तर के अनुकूल, स्वालम्बन, श्रम, शिविर आदि का विद्यालय में अभ्यास अवश्य कराया जावे जिससे वे जीवन में आत्मविश्वासी, श्रमशील व साहसी बन सकें और थोड़ी कठिनाई पर ही परेशान व निराश न हो तथा उनमें परिस्थिति के अनुसार निर्णय व कार्य की क्षमता उत्पन्न हो। आत्मविश्वास जीवन में सफलता की श्रेष्ठ कुञ्जी होता है।

हो गया और हम हर क्षेत्र में पाश्चात्य के मुखापेक्षी बन गए। एक समय था जब विदेशों के लोग भारत में शिक्षा ग्रहण करने आने को अपना सौभाग्य मानते थे। आज भारत का युवा विदेशों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने को गौरवमय मानता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग 6 दशक बाद भी आज हमारे मस्तिष्क पर अंग्रेजीयत व पाश्चात्य संस्कार हावी हैं। 'हिन्दी' नाम को राष्ट्र भाषा है व्यवहार में सरकारी कार्यालयों, उद्योगों, न्यायालयों में अभी भी अंग्रेजी व अंग्रेजीयत का ही बोल-बाला है। 'सर' व 'मी लार्ड' अभी भी सम्मान जनक उद्बोधन के सूचक हैं। गुलामी काल में निर्धारित गुलामी मानसिकता का पाठ्यक्रम व इतिहास अभी भी पढ़ाया जाता है। महाराणा प्रताप व शिवाजी आज भी हमारे पाठ्यक्रम निर्माताओं की दृष्टि में भ्रमित देशभक्त,

लुटेरे, अविवेकी आदि संज्ञाओं से विभूषित हैं। हमें उन्हें 'हिन्दू समाज रक्षक' कहने में लज्जा आती है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की एक पुस्तक से तो महाराणा प्रताप के साथ जोड़े 'हिन्दू' शब्द को ही हटा दिया गया था, यह अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना है तथा तुष्टिकरण की पराकाष्ठा हैं। अनेक विद्वानों के श्रेष्ठ ज्ञान वाहक पाठ पुस्तकों से इसलिए हटा दिए गए क्योंकि वे लेखक राष्ट्रीय विचारों के तो थे किन्तु सत्ताधारी दल विशेष की विचार धारा के नहीं थे। यह स्थिति चिंताजनक है।

वर्तमान में शिक्षा के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं। हर युवा अपने को उच्च प्रशासनिक सेवा, अभियांत्रिकी अथवा चिकित्सा सेवा में ले जाना चाहता है, यद्यपि इन सेवाओं के अवसर अब अत्यन्त सीमित हो गए हैं। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा न

होकर अब तक भी मुख्य रूप से अंग्रेजी ही है। पूर्व प्राथमिक स्तर से ही अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों की गाँव-गाँव तक अधिकता व उनके प्रति अभिभावकों का रुझान चिंता का विषय है। एक समृद्ध भाषा के रूप में अंग्रेजी का अध्ययन करना-कराना बुरा नहीं है। मातृभाषा माध्यम के अभाव में बालकों व युवाओं में भारतीय परिवेश के संस्कार आ ही नहीं पाते। विश्व के किसी भी देश में ऐसा नहीं है। हर देश की अपनी भाषा है और वही शिक्षा का माध्यम। 1948 में हमसे बाद में तथा संसार में निर्वासित व बिखरे हुए इजरायल के यहूदियों ने अपनी भाषा 'हिब्रू' की पुनर्स्थापना कर उसे शिक्षा व संस्कार का माध्यम बनाया और आज वह छोटा सा इजराइल (मात्र 70-75 लाख आबादी) करोड़ों की आबादी के अरब देशों व अन्य देशों को नाको चने चबाते हुए

अपनी स्वातंत्रता को सुरक्षित रखते हुये प्रगति के पथ पर हर क्षेत्र में अग्रसर है। रेगिस्तान को हरा भरा कर हरित क्रांति का विश्व को संदेश दे रहा है। आज हमारे देश में शिक्षा का स्वरूप व पाठ्यक्रम वे लोग तय करते हैं जिनका उस स्तर विशेष की शिक्षा से न तो छात्र के रूप और न शिक्षक के रूप में विशेष संबंध होता है बल्कि कुछ कुशल तिकड़म बाज वातानुकूलित कक्षों में बैठकर ग्रामीण शिक्षा का स्वरूप, विधि व पाठ्यक्रम तय करते हैं जो सर्वथा अव्यवहारिक होता है। शिक्षा के नियामकों शिक्षा बोर्ड के अध्यक्षों, विश्वविद्यालयों के कुलपतियों का चयन योग्यता के आधार पर न हो राजनीतिक स्तर पर अधिक होता है। परिणाम सामने है। शिक्षा क्षेत्र में व्यावहारिक रूप ये जुड़े हुए विद्वानों द्वारा शिक्षा के स्वरूप पाठ्यक्रम निर्धारण एवं पुस्तकों की विषय वस्तुओं के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिए गये हैं वे माननीय एवं ग्रहणीय है- यथा पूर्व प्राथमिक शिक्षा में केवल उठना, बैठना, खेल-कूद, चित्र बनाना, गिनती, अक्षर पहचानना (चित्रों के माध्यम से ही) सिखाया जावे। प्राथमिक स्तर पर कक्षा एक व दो में केवल मातृभाषा ही सिखाई जावे। तथा बालक/बालिका को घर परिवार, पड़ोस में व्यवहार की शिक्षा दी जावे।

कक्षा एक व दो के बाद से स्थानीय इतिहास, भूगोल, पर्यावरण, महापुरुषों, पवित्र स्थानों, नदियों, पर्वतों आदि का ज्ञान अवश्य कराया जावे। स्वभाषा व उसके साहित्य का ज्ञान अवश्य दिया जावे व गणित का ज्ञान भी कराया जावे। विद्यार्थियों का सतत आंतरिक मूल्यांकन प्रामाणिकता से किया जावे तथा कक्षा 10 से पूर्व कोई बोर्ड परीक्षा न हो। किन्तु प्राथमिक व उच्च प्राथमिक के बाद विभागीय एवं जिलास्तर पर समान परीक्षा हो। व्यवसायिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा संगीत, संस्कृत, नैतिकशिक्षा का प्रावधान प्राथमिक स्तर से ही किया जावे। माध्यमिक/ उच्च माध्यमिक के बाद

महाविद्यालय एवं उच्च विश्वविद्यालय शिक्षा विषय विशेष के विशेष योग्यताधारी व अपेक्षित उत्तम प्रतिशत वाले विद्यार्थियों को ही दी जावे शेष को व्यवसायिक पाठ्यक्रम पढ़ाए जावें जिससे वे कुछ व्यवसाय कर सकें और केवल उपाधिधारी बनकर प्रतिस्पर्द्धा में पिछड़कर निराशा के शिकार न हों। शिक्षा के हर स्तर पर शिक्षा के स्वरूप, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें आदि निर्धारण का कार्य शिक्षा स्तर विशेष से जुड़े योग्य शिक्षकों व शिक्षाविदों द्वारा ही कराया जावे। विद्यार्थियों को देश का सही इतिहास पढ़ाया जावे।

शिक्षा में हर स्तर पर श्रेष्ठ जीवन मूल्यों, नैतिकता, चरित्र, अनुशासन, स्वयं, परिवार, समाज व देश मानवता व प्राणीमात्र के प्रति दायित्व भाव को जागृत कराने वाले व्यवहारिक शिक्षण का प्रावधान रखा जाये। बालकों की आयु, स्वास्थ्य, मानसिक व शारीरिक स्तर के अनुकूल, स्वालम्बन, श्रम, शिविर आदि का विद्यालय में अभ्यास अवश्य कराया जावे जिससे वे जीवन में आत्मविश्वासी, श्रमशील व साहसी बन सकें और थोड़ी कठिनाई पर ही परेशान व निराश न हो तथा उनमें परिस्थिति के अनुसार निर्णय व कार्य की क्षमता उत्पन्न हो। आत्मविश्वास जीवन में सफलता की श्रेष्ठ कुञ्जी होता है।

एक बात और, बालक, बालिका समानता व स्त्री-पुरुष समानता के चक्कर में बाधक बालकों व बालिकाओं की हर स्तर पर समान शिक्षा व्यवस्था न की जाकर उनकी दैहिक, मानसिक व मनोवैज्ञानिक आवश्यकता के अनुसार शिक्षा व्यवस्था का प्रावधान किया जावे। बालिकाओं व स्त्रियों को भारतीय परम्परानुसार पुरुष से आगे लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती के रूप में तैयार किया जाय। वे भी सीता सावित्री, गार्गी, मीरा, पद्मा, ज्ञांसी की रानी, दुर्गावती, किरण बेदी, कल्पना चावला बन संसार में भारतीय नारी का गौरव बढ़ाने में सक्षम बनें। पूर्व प्राथमिक व प्राथमिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया

जाये जो आज सर्वथा उपेक्षित तथा मात्र संख्यात्मक दृष्टि की औपचारिकता एवं राजनीतिक तुष्टिकरण की वस्तु रह गई है। इस शिक्षा के लिए उत्तम विद्यालय परिसर, शिक्षण सामग्री, योग्य व संस्कारवान तथा चरित्रवान समर्पित भाव वाले शिक्षकों की व्यवस्था हो तभी सुपरिणामों की आशा की जा सकती है। इनकी उपेक्षा कर अच्छे फलों की आशा व्यर्थ है। प्राथमिक शिक्षा के लिए न भवन न साधन तथा 1200/- प्रतिमास के बंधुआ शिक्षकों वाली विसंगति उचित नहीं है। जीवन निर्माण एवं जीवन के सर्वांगीण विकास के साधन प्राथमिक शिक्षा पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा को केवल पुस्तकीय ज्ञान का आधार न माना जाकर सही अर्थों में शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास का साधन मानकर तथा सर्वाधिक महत्व देकर उत्तमोत्तम व्यवस्था की जानी चाहिए। पिछले कुछ वर्षों में पूर्व प्राथमिक व प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तर तथा अभियांत्रिकी, चिकित्सा आदि के क्षेत्रों में बहुवर्गीय शिक्षा का संख्यात्मक विस्तार तो बहुत हुआ है किन्तु गुणात्मक नहीं। फलतः शिक्षा का यह विस्तार बेरोजगारी, आत्म असंतोष व निराशा का कारण बनता जा रहा है। अब शिक्षा व्यक्ति निर्माण का पवित्र साधन न रहकर दुकानदारी व व्यवसाय बनती जा रही है। निजीकरण के नाम पर लूट की छूट सर्वथा अनुचित है। शिक्षा ही किसी परिवार, समाज व राष्ट्र की उन्नति का आधार है। इस पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना आवश्यक है। शिक्षा के महत्व का सही रूप में समझा जाना आवश्यक है। शिक्षा की गुणवत्ता से ही भारत को पुनः 'विश्वगुरु' का स्थान प्राप्त हो सकेगा।

‘एतद्देश प्रसूतस्य सकाशासदग्र जन्मन स्व स्व चरित्रम् शिक्षेन, पृथिव्या सर्व मानवा’ का लक्ष्य हमारे सामने सदैव रहना चाहिए। □

(प्राचार्य (से.नि.), सामाजिक विषयों के अध्येता)

स्व प्रयास की मिसाल : 'मैडम' शोभा मूर्ति

सफलता, सार्थकता और सबलीकरण का सबसे प्रभावी औजार है शिक्षा। अगर सबको, खासकर गरीब और कमजोर तबके को अच्छी शिक्षा मिले, तो समाज और देश के विकास में सबका योगदान संभव हो। ऐसा होने पर लोकतंत्र की भी सार्थकता है। लोकतंत्र सबको समान अवसर देता है। मगर इन अवसरों का समान रूप से लाभ हर कोई तभी उठा सकता है, जब वह शिक्षित हो। सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को सबका अधिकार घोषित कर रखा है। मिड डे मील जैसी योजनाओं से गरीब बच्चों को भी स्कूलों की ओर आकर्षित किया जा रहा है। फिर भी, काफी बच्चे इसके बावजूद स्कूलों का मुंह नहीं देख पाते। स्कूलों में जाकर भी काफी बच्चे सही शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते। और अंततः स्कूलों से आगे नहीं बढ़ पाते। कुछ के पास पढ़ाई के साधन नहीं होते, कुछ के पास माहौल नहीं होता और कुछ को गरीबी के कारण कुछ काम करना पड़ता है, ताकि वे घर की कमाई में हाथ बटा सकें।

शिक्षा का प्रसार करना सरकार का कर्तव्य है। पर 120 करोड़ की आबादी का बोझ सरकार पर भारी पड़ता है। इसके अलावा, कभी सरकार की प्राथमिकता बदल जाती है तो कभी अनिवार्यता। भ्रष्टाचार भी उसके प्रयासों के कदमों को जकड़ लेता है।

ऐसे में, नागरिक पहल महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐसी पहल देश के कोने-कोने में हो भी रही हैं। ऐसी ही एक पहल है नवी मुंबई के तुर्भे में, जो एक मिसाल बन गई है। तुर्भे रेलवे स्टेशन के एकदम बाहर है तुर्भे स्टोर्स। इसके सामने है बाबा गली। इस गली में हर समय किताबें हाथ में लिए आते-जाते बच्चे नजर आते हैं। वे पिछले दिन की पढ़ाई पर चर्चा करते दिखते हैं कि कहीं 'मैडम' उनसे पूछ न ले कि कल क्या पढ़ाया था। ये 'मैडम' हैं शोभा मूर्ति। वाशी के पॉश सेक्टर 17 में रहने वाली 51 वर्षीय शोभा रोज इस गरीब

बस्ती में आकर बच्चों को पढ़ाती हैं। यहां कोई भी बता देगा कि मैडम कहां पढ़ाती हैं। शोभा पिछले 12 साल से यहां झोपड़पट्टी के बच्चों को पढ़ा रही हैं। वे उन्हें स्कूलों में एडमिशन भी दिलाती हैं और क्लास दर क्लास पढ़ाई में भी उनकी मदद करती हैं। शोभा का मानना है कि शोषण वहीं होता है, जहां शिक्षा की कमी हो। इसलिए अगर सब तक शिक्षा पहुंचे, तभी एक समताकारी समाज बन सकता है। समताकारी समाज का सपना आंखों में संजोए शोभा सैकड़ों बच्चों को अंग्रेजी, विज्ञान और गणित पढ़ाती हैं। वैसे शोभा शिक्षक नहीं हैं। वे चार्टर्ड अकाउंटेंट हैं। उन्होंने अपना कैरियर टाटा इलेक्ट्रिक्स में ऑडिटर के रूप में शुरू किया था। काफी समय उन्होंने कॉर्पोरेट सेक्टर में काम किया। एक बार वे एक असाइनमेंट पर देहातों में गईं। तब उन्हें लगा कि शिक्षा की कमी भारत की प्रगति में बाधक बन रही है। उन्होंने सोचा कि अगर अगली पीढ़ी सुशिक्षित नहीं हुई, तो भारत महाशक्ति नहीं बन पाएगा। तभी उन्होंने नौकरी छोड़कर वंचित और गरीब बच्चों के बीच काम करना शुरू किया, उन्हें शिक्षित करने का काम।

शोभा ने नौकरी छोड़ने के बाद तीन साल तक एक एनजीओ में काम किया। उन्होंने 1997 में अपना एनजीओ 'आरम्भ' शुरू किया। उन्होंने गरीब बच्चों को अच्छी शिक्षा के रास्ते अच्छे रोजगार पाने के लिए तैयार करने का बीड़ा उठा लिया। शुरुआत में सारा खर्चा शोभा को खुद उठाना पड़ा। एक कमरा किराये पर लिया, बच्चों को पढ़ाई का सामान दिलाया। कुछ अभिभावक अपने बच्चों को, खासकर लड़कियों को पढ़ने के लिए भेजना ही नहीं चाहते थे। उन्हें लगता था कि उनके बच्चे अगर कुछ काम करेंगे, तो उनकी कमाई घर आएगी। वहां 10-11 साल के बच्चों को भी काम पर भेजा जाता था। शोभा को ऐसे अभिभावकों की खुशामद करनी पड़ी कि वे अपने बच्चों को काम पर नहीं पढ़ने भेजें। धीरे-धीरे बच्चे

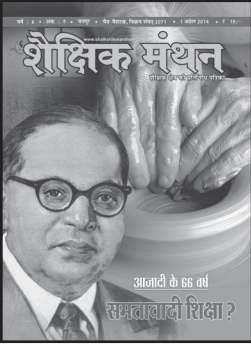
आने लगे। शोभा के सामने अगली बाधा थी स्थानीय गुंडों की गुंडागर्दी। उन्हें लगा कि उनके इलाके में बच्चों की पढ़ाई-लिखाई उनके खिलाफ है, पढ़े-लिखे बच्चे उनके लिए काम नहीं करेंगे, उन्हें भविष्य में अपने इलाके में गुंडे मिलने बंद हो जाएंगे, इसलिए उन गुंडों ने शोभा को धमकियां देनी शुरू कर दीं। वे लोग शोभा की क्लास का इस्तेमाल ताश खेलने और अपने अड्डे के रूप में करना चाहते थे। शोभा उनके सामने अड़ गईं। पुलिस स्टेशन जाकर उनकी शिकायत कर दी। पुलिस ने शोभा को आश्वासन दिया कि वे बच्चों को पढ़ाना जारी रखें, कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाएगा।

शोभा का मिशन चल निकला। आज उनके छह केन्द्रों में 4 से 19 साल तक के एक हजार से ज्यादा बच्चे पढ़ रहे हैं। शोभा उन्हें प्री स्कूलिंग शिक्षा देकर स्कूलों में उनका एडमिशन कराती हैं। कई बच्चे तो कॉलेज तक पहुंच गए हैं। उनमें से कुछ अब शोभा के साथ पार्ट टाइम काम भी कर रहे हैं। अब तो आईआईटी और एमबीए के कुछ विद्यार्थी भी शोभा की सहायता कर रहे हैं। शोभा के पहले बैच में एक लड़का था नारायण। इसके पिता दिहाड़ी मजदूर थे। नारायण की नौकरी एक प्राइवेट बैंक में लग गयी। उसकी पगार 23 हजार रुपये है। वह शोभा के केन्द्रों के बच्चों का हीरो है। वह भी शाम को बच्चों को पढ़ाने आता है।

शोभा ने अकेले दम 14 साल पहले जो शुरुआत की थी, वह एक बड़ा आकार ले चुकी है। फिर भी, पूरे देश के परिप्रेक्ष्य में यह एक नन्हा सा दीया है। मगर इसकी टिमटिमाहट की रोशनी दूर तक जाएगी। देश में ऐसे बहुत से दीपक टिमटिमा रहे हैं। जब इन सबकी रोशनी मिलेगी, तो दुनिया की आंखें चौंधिया जाएंगी। यह ज्ञान की रोशनी है... जगमग करती दूर तक जाएगी! □

विलगाव और विलोपन

□ सदानंद शाही



यह बात स्पष्ट रहनी चाहिए कि भाषा का संबंध धर्म और सत्ता से नहीं, बल्कि मनुष्य की चेतना से होता है। पाकिस्तानी हुक्मरानों को यह बात नहीं समझ में आई और उन्होंने भाषा को धर्म और वर्चस्व की राजनीति से जोड़ कर बांग्लाभाषियों की चेतना को कुंठित करने की कोशिश की। उसका परिणाम सामने है। भाषा हमारी चेतना का वह हिस्सा है, जो संवाद करना चाहती है। वर्चस्व या सत्ता की राजनीति में भाषा का दुरुपयोग वास्तव में भाषा को उसके मूल धर्म संवाद से वंचित करना है। वर्चस्व की राजनीति भाषा को धर्म, राष्ट्र या विकास आदि से जोड़ कर दूसरी भाषाओं से संवाद स्थापित करने के बजाय उनकी कब्रगाह बनाने पर आमादा रहती है। इसके घातक परिणाम होते हैं।

बहुत दिनों तक भाषाओं को महज अभिव्यक्ति का माध्यम माना जाता रहा। इधर यह समझ बनी है कि भाषाएं अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ ही अपने भाषाभाषी समुदाय के व्यक्तित्व का हिस्सा हैं। भाषाओं के भीतर ज्ञान और कौशल का अनूठा भंडार है। यह ज्ञान और कौशल खास भौगोलिक और सामाजिक परिवेश में विकसित हो रही मनुष्यता के सामूहिक सोच से आता है। इसीलिए मातृभाषाएं हमारी समझ को विकसित करने का सर्वोत्तम माध्यम होती हैं। मातृभाषा के माध्यम से प्राप्त ज्ञान संवेदना में उतर जाता और हमारे ज्ञान को संवेदनात्मक बनाता है। मातृभाषा से कट जाने की वजह से हमारा आधुनिक जीवन चाहे जितना चमकदार हो गया है, जीवन-रस सूखता गया है।

मातृभाषा में होते हुए हम अपने मानस और संवेदना के इतिहास में होते हैं। इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर उन्नीस सौ निन्यानवे में यूनेस्को ने मातृभाषाओं को संरक्षित और विकसित करने की जरूरत पर बल दिया और इक्कीस फरवरी को अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव पारित किया। सन दो हजार से दुनिया इक्कीस फरवरी को अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के रूप में मनाती है।

इक्कीस फरवरी की तिथि निश्चित करने की वजह भी भाषा के बारे में हमारी समझ को विकसित करने वाली है। बांग्लादेश (तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान) में ढाका विश्वविद्यालय के छात्र बांग्ला भाषा को मान्यता देने की मांग पर प्रदर्शन कर रहे थे। इक्कीस फरवरी 1952 को पाकिस्तानी पुलिस की गोलीबारी से चार प्रदर्शनकारी छात्र शहीद हो गए। उनकी स्मृति में बांग्लादेश में स्मारक बना है। आगे चल कर मातृभाषा के लिए शुरू हुए आंदोलन की परिणति बांग्लादेश के उदय में हुई। धर्म जैसे बेहद संवेदनशील सवाल पर बने देश में भी मातृभाषा का सवाल इतना महत्त्वपूर्ण बन गया कि देश के दो हिस्से हो गए।

कुछ लोगों को मातृभाषा का सवाल अलगाववादी लगता है। लेकिन यह गलत समझ का नतीजा है। किसी भाषा को वर्चस्व की राजनीति का हथियार बनाना अलगाववादी रवैया है। कोई भाषा कितनी भी महान क्यों न हो अगर वह दूसरी भाषाओं की कब्रगाह पर अपनी महानता का परचम लहराना चाहेगी तो वह भाषा नहीं सत्ता के हथियार का काम कर रही होगी। पाकिस्तान की सत्ता ने यही किया था। वह उर्दू जैसी महान भाषा को सत्ता के ओछे हथियार में बदल रही थी।

यह बात स्पष्ट रहनी चाहिए कि भाषा का संबंध धर्म और सत्ता से नहीं, बल्कि मनुष्य की चेतना से होता है। पाकिस्तानी हुक्मरानों को यह बात नहीं समझ में आई और उन्होंने भाषा को धर्म और वर्चस्व की राजनीति से जोड़ कर बांग्लाभाषियों की चेतना को कुंठित करने की कोशिश की। उसका परिणाम सामने है। भाषा हमारी चेतना का वह हिस्सा है, जो संवाद करना चाहती है। वर्चस्व या सत्ता की राजनीति में भाषा का दुरुपयोग वास्तव में भाषा को उसके मूल धर्म संवाद से वंचित करना है। वर्चस्व की राजनीति भाषा को धर्म, राष्ट्र या विकास आदि से जोड़ कर दूसरी भाषाओं से संवाद स्थापित करने के बजाय उनकी कब्रगाह बनाने पर आमादा रहती है। इसके घातक परिणाम होते हैं।

भाषा की प्रकृति संवादधर्मी है। इसलिए जरूरत भाषाओं के बीच वैमनस्य पैदा करने वाली शक्तियों को पहचानने और उन्हें खारिज करने की है। भाषा की बहुलता हमारी थाती है। इस बहुलता को समस्या समझाना भूल है। भाषाई बहुलता के बारे में हम महान अफ्रीकी लेखक न्गूगी वा थ्यांगो के इस कथन से काफी कुछ सीख सकते हैं कि अनेक भाषाओं वाला विश्व विभिन्न रंगों वाले फूलों के मैदान जैसा होना चाहिए। कोई ऐसा फूल नहीं है, जो अपने रंग या आकार के कारण दूसरे फूल से बढ़ कर हो। ऐसे सभी फूल अपने रंगों और आकारों की विविधता में अपने सामूहिक पुष्पत्व को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार हमारी विभिन्न भाषाएं एक सामूहिकता के बोध को व्यक्त कर सकती हैं

और उन्हें करना चाहिए।

भारत के संदर्भ में देखें तो सामंती और औपनिवेशिक चेतना बहुत हद तक मातृभाषाओं के साथ यही काम कर रही है। अंग्रेजों ने कहीं न कहीं हमारे दिमाग में यह बात भर दी है कि देशी भाषाएं गंवारू हैं। दरअसल, औपनिवेशिक मानसिकता देशी भाषाओं के बारे में हीनताबोध पैदा करके हमें अपने परिवेश और चेतना के इतिहास से वंचित कर देती है। अंग्रेजों के जाने के बाद देश की सत्ता में जो वर्ग आया वह अपने परिवेश और चेतना के इतिहास से कटा हुआ था। इसीलिए देश की खनिज संपदा का तो दोहन होता रहा और मातृभाषाओं को मरने के लिए छोड़ दिया गया। आज भी हमारे राजनीतिक उद्यम में मातृभाषा कहीं भी एजेंडे पर नहीं है। शायद इसीलिए मातृभाषाओं के बारे में किसी भी राजनीतिक दल की कोई खुली नीति नहीं है।

स्वाधीनता आंदोलन के साथ ही वासुदेवशरण अग्रवाल, राहुल सांकृत्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे मनीषियों ने जनपदीय साहित्य का सवाल उठाया था। यह जनपदीय भावना भाषाई वैमनस्य नहीं, भाषाओं के सामंजस्य की बात करती है। इन मनीषियों का सोच था कि जनपदों में विकसित हुआ साहित्य, संगीत कला कौशल, ज्ञान-विज्ञान उपेक्षा की वस्तु नहीं है। उनमें हजारों वर्ष का मानवीय संघर्ष, अनुभव और चेतना का इतिहास संचित है। इसलिए जनपदीय साहित्य का अध्ययन और मूल्यांकन किया जाना चाहिए। देखना यह चाहिए कि इस निधि के भीतर ऐसा क्या है, जो हमारे आधुनिक जीवन को बेहतर बनाने के काम आ सकता है।

मातृभाषाओं के अध्ययन के लिए हमें जनपदीय अध्ययन के नजरिए को अपनाना होगा। औपनिवेशिक काल में लोक की बड़ी चर्चा हुई। आज भी हमारे विश्वविद्यालयों में देशी भाषाएं प्रायः



लोकसाहित्य के रूप में पढ़ाई जाती हैं। कृपा भाव से। विकास आदि बहुत जरूरी मसले हैं, लेकिन चलो भाई थोड़ा मनोरंजन ही सही। लोकभाषाएं भी एक कोने में पड़ी रहें। विश्वविद्यालयों और अकादमिक संस्थानों में अपने परिवेश की इतिहास चेतना से वंचित और मातृभाषा से रहित बेहद विपन्न अकादमिक अधिकारी ऐसा कहते-सुनते पाए जाते हैं।

इस नजरिए की समस्या यह है कि यह हमारी मातृभाषाओं को संग्रहालय की वस्तु बना देता है। संग्रहालय में जाकर कोई वस्तु सुरक्षित भले हो जाए, जीवन में उसकी भूमिका खत्म हो जाती है। मातृभाषाओं की यह स्थिति भी एक बड़ी वजह है, जिससे हमारे देश में एक भी विश्वस्तरीय शिक्षण संस्थान नहीं है।

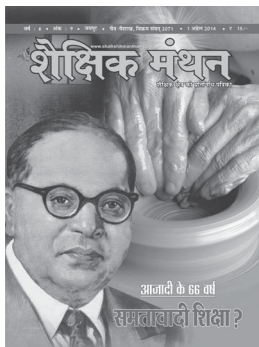
दुनिया भर के तमाम शिक्षाविदों की राय है कि मातृभाषा में आरंभिक शिक्षा हो तो बच्चे की समझदारी बेहतर हो सकती है। पिछले दिनों एनसीईआरटी ने इस पर गहन विचार मंथन किया और इस नतीजे पर पहुंची कि समझ का सबसे उपयुक्त माध्यम मातृभाषा ही हो सकती है।

सवाल है कि इस बात को समझाया कैसे जाए? राजनीतिक नेतृत्व की वरीयताएं दूसरी हैं। भाषा और संस्कृति जैसे सवालों पर विचार करने की फुरसत उनके पास नहीं है। राममनोहर लोहिया ने सामंती भाषा बनाम लोकभाषा जैसे निबंधों में इस सवाल को संबोधित किया है। लेकिन बात वरीयता पर आकर अटक जाती है। वोट की राजनीति गंभीर और दूरगामी सामाजिक प्रश्नों से कटी हुई है। यूनेस्को भले मातृभाषाओं का मूल्य समझ ले, हमारे राजनीतिक तंत्र को न तो उसे समझने की जरूरत है और न ही योग्यता। इसी तरह हमारा शैक्षणिक नेतृत्व जिन हाथों में है वे तकनीक से परे कुछ भी नहीं सोच पा रहे हैं।

भारत की नदियों की तरह भाषाएं भी उसकी थाती हैं। लेकिन किसी भी राजनीतिक दल के एजेंडे में मातृभाषाओं का सवाल नहीं है। कुछ दल विभिन्न कारणों से नदियों की बात तो करने लगे हैं, पर तब जब हमारी महान नदियां सूखने के कगार पर पहुंच गई हैं। क्या हम मातृभाषाओं के भी विलुप्त होने का इंतजार कर रहे हैं? □

विज्ञान की कौशलविहीन शिक्षा

□ आशुतोष उपाध्याय



प्रकृति का सीधे अनुभव लिए बिना और वास्तविक समस्याओं से जूझे बिना, हाथों को हुनरमंद बनाए क्या कोई ज्ञान संभव है। क्या किताबों में लिखी बातें या स्क्रीन पर भागती तस्वीरें असल अनुभव दे सकती हैं? तैराकी पर दर्जनों किताबें पढ़ जाइए, लेकिन यदि कभी पानी में न उतरे हों तो जरूरत पड़ने पर यह पढ़ाई शायद ही काम आए। वास्तविक अनुभव प्रकृति के साथ हमारे संबंधों का निर्माण करते हैं और इस प्रक्रिया में बनने वाली समझ को हमारी अनुभूतियों तक ले जाते हैं। ये हमें बताते हैं कि ज्ञान का सही अर्थ सूचना जुटाना नहीं, बल्कि जीने का हूनर हासिल करना है। ठोस अनुभव हमें संस्कारवश मिलने वाले विचारों को जांचने - परखने की क्षमता देते हैं। इनसे गुजरे बिना जीवन ख्याली पुलावों तक सिमटकर रह जाता है।

दिन-रात पढ़ाई में उलझे रहने वाले शहरी मध्यवर्गीय किशोर बच्चों पर थोड़ा गौर करें। स्कूल की तैयारी से इनकी सुबह की शुरुआत होती है। नहाना-धोना और जल्दबाजी में नाश्ता निपटाकर स्कूल का बस पकड़ना, दोपहर को थके-मांदे घर वापस आना और फिर लंच। इसके बाद देर शाम तक ट्यूशन का सिलसिला। अंधेरा होते-होते ये लौटे आते हैं, फिर थोड़ा होमवर्क करते हैं। टीवी या कंप्यूटर गेम्स खेलते हैं और फिर नींद की आगोश में।

लगभग यही दिनचर्या प्रतिदिन की होती है। इस दिनचर्या के बची-खुची जगहों पर मोबाइल फोन और सोशल मीडिया पर समय बीतता है। इनमें से कुछ बच्चे माता-पिता की महत्वाकांक्षाओं की खातिर कभी-कभी म्यूजिक, डांस या स्पोर्ट्स के सपने बेचने वाली दुकानों का रुख भी करते हैं। मगर खेलकूद, मौज-मस्ती या छोटे-मोटे घरेलू काम इन बच्चों की जीवन से लगभग गायब हो चुके हैं। इस दिनचर्या से माता-पिता संतुष्ट हैं, क्योंकि स्कूली परीक्षाओं में बच्चे शानदार प्रदर्शन कर रहे हैं और इनमें से ज्यादातर दसवीं या बारहवीं की परीक्षा में नब्बे फीसदी की सुनहरी रेखा पार करते हैं।

अब जरा स्कूली दिनचर्या पर भी एक नजर डालें। अच्छे या बुरे, दोनों की किस्म के स्कूलों में पढ़ाई के तौर-तरीके कमोबेश एक जैसे हैं। फर्क इतना भर है कि खराब स्कूलों में अक्सर कुछ नहीं, बच्चों को अपने बूते बनने या बिगड़ने की पूरी आजादी होती है। कथित अच्छे स्कूलों में सख्ती के साथ कक्षाएं लगती हैं, मगर इनका जोर परीक्षाओं के लिए रटने पर रहता है। इधर के दिनों में स्मार्ट क्लास के नाम पर वर्चुअल पढ़ाई का फैशन चला है। अनुभव और कौशल आधारित शिक्षा के लिए यहां भी कोई जगह नहीं है। शिक्षकों के पास वास्तविक अनुभवों के जरिये सिखाने का न तो प्रशिक्षण है और न

ही नए प्रयोगों में उनकी रुचि है। आखिर वह भी उस विशाल उपभोक्ता समाज के सदस्य हैं, जो असीमित उपभोग को ही जीवन का परम लक्ष्य मानता है। रचनात्मक को नहीं। कुल मिलाकर स्कूल में भी बच्चों का वास्ता उनकी रुचि के किसी कौशल पर आधारित काम से नहीं पड़ता।

देशभर में तमाम शिक्षित लोगों के अनुभव यही बताते हैं कि 21वीं सदी के शहरी बच्चे हाथों के हुनर और वास्तविक अनुभवों के मामले में निहायत फिसड्डी हैं। आठवीं के बच्चे कागज के जैसे प्लेन, नाव या चकरी नहीं बना पाते जो पिछली पीढ़ी के बच्चे प्राथमिक कक्षाओं में बड़ी आसानी से बना लेते थे। दी गई नाप के हिसाब से गत्ता या कागज काटना, जोड़ना और सरल रचनाएं निर्मित करना उन्हें मुश्किल लगता है। इतना ही नहीं, ऐसे काम वे देर तक नहीं कर पाते और जल्दी ऊबने लगते हैं। इसे जानने के लिए आप अपने आसपास ऐसे किसी होनहार बच्चे से मुखातिब हों और उसे कोई व्यावहारिक समस्या हल करने, मसलन कमीज का बटन टांगने आदि को कहें। आइआईटी की तैयारी कर रहा यह बच्चा बहुत संभव है इस मामूली से काम को भी नहीं कर पाए। घरेलू जीवन से जुड़े हल्के-फुल्के काम पहले ही कामवालों के खाते में डाले जा चुके हैं। इसलिए आज बच्चों से अपना बिस्तर जमाने, कमरे या बाथरूम अथवा बर्तनों की सफाई, चाय-नाश्ता तैयार करने, सिलाई-बुनाई, साधारण मरम्मत, जुगाड़ और रोजमर्रा के चीजों की खरीद-फरोख्त जैसे कामों की उम्मीद नहीं की जा सकती। वास्तव में इस तरह के काम बच्चों को उनके परिवेश और उसमें पाई जाने वाली वस्तुओं की समझ बनाने में मदद करते हैं। ये बच्चों को उनकी क्षमताओं और उन्हें बेहतर बनाने की तरकीबों के बारे में बताते हैं। जरा सोचिए, प्रकृति का सीधे अनुभव लिए बिना और वास्तविक समस्याओं से जूझे बिना, हाथों को हुनरमंद बनाए क्या कोई ज्ञान संभव है। क्या किताबों में लिखी

बातें या स्क्रीन पर भागती तस्वीरें असल अनुभव दे सकती हैं? तैराकी पर दर्जनों किताबें पढ़ जाइए, लेकिन यदि कभी पानी में न उतरे हों तो जरूरत पड़ने पर यह पढ़ाई शायद ही काम आए। वास्तविक अनुभव प्रकृति के साथ हमारे संबंधों का निर्माण करते हैं और इस प्रक्रिया में बनने वाली समझ को हमारी अनुभूतियों तक ले जाते हैं। ये हमें बताते हैं कि ज्ञान का सही अर्थ सूचना जुटाना नहीं, बल्कि जीने का हूनर हासिल करना है। ठोस अनुभव हमें संस्कारवश मिलने वाले विचारों को जांचने-परखने की क्षमता देते हैं। इनसे गुजरे बिना जीवन ख्याली पुलावों तक सिमटकर रह जाता है।

अगर किसी बच्चे ने कभी पानी के खेल न खेले हों, तरह-तरह की चीजों को पानी में डालकर न देखा हो, कागज या पत्ते की नावें न तैराई हों तो जान लीजिए आर्कमिडीज का सिद्धांत समझने में उसे

नाकों चने चबाने पड़ेंगे। पानी के खेल हमें इस सिद्धांत की व्यावहारिक समझ देते हैं। नदी-तालाब में तैराकी सीखने वाले ग्रामीण बच्चे आखिर किस किताब या शिक्षक से मदद लेते हैं? हमारा शरीर अपने घनत्व के हिसाब से पानी से भारी है और इसलिए उसमें आसानी से डूब जाता है। अपने शरीर के साथ हम ऐसा क्या करते हैं कि शरीर न सिर्फ तैरने लगता है, बल्कि तेजी से आगे भी बढ़ता है। आर्कमिडीज के सिद्धांत को समझने के लिए चीजों के डूबने-तैरने के वास्तविक अनुभवों से गुजरना जरूरी है। सच्चे ज्ञान का मकसद खुद को खोजना है, मोटी पगार वाली नौकरियों को नहीं। सच्चे ज्ञान का मकसद उस मंजिल तक पहुंचना है, जो हमें खुशियां देती हैं और अपने परिवेश के ज्यादा करीब लाती है। इस नजरिये से देखें तो पढ़ाई में अच्छा कर रहे हमारे बच्चे अपने जीवन या समाज में आज कुछ खास

नहीं कर पा रहे हैं। देश के सबसे प्रतिभावान बच्चे आइआईटी में प्रवेश पाते हैं। बेहतरीन सुविधाओं के साथ तकनीकी प्रशिक्षण हासिल करने वाले इन बच्चों में से ज्यादातर इस शिक्षा को अलविदा करने में एक पल भी नहीं लगाते। वे पैसे के लिए ऐसी नौकरियों की तरफ भागते हैं, जिनका उनकी विशेषज्ञता से कोई नाता नहीं।

गौरतलब है कि काम के प्रति यह नजरिया उन्हें देश की श्रेष्ठतम संस्था में दी गई शिक्षा से मिला है। ऐसे में गली-कूचों में खरपतवार की तरह उगे तकनीकी संस्थानों की शिक्षा का अंदाजा लगाना मुश्किल काम नहीं। ऐसे ही संस्थानों से बीटेक, बीएड जैसी महंगी डिग्रियां लेकर निकले लाखों नौजवान बेकार घूम रहे हैं। उनके पास डिग्रियां तो हैं, लेकिन अपने बूते जिंदगी का हुनर नहीं है। □

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

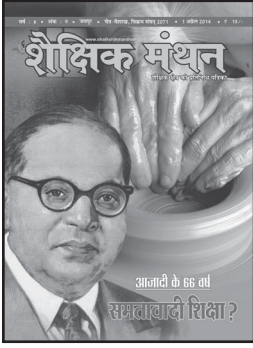
हाजीपुर (बिहार) में सम्पन्न हुआ शिक्षिका सम्मेलन

जब तक आधी आबादी असुरक्षित और असहाय रहेगी तब तक देश, राज्य, समाज और परिवार का विकास असंभव है। महिलाओं को अपने अधिकार और सम्मान के लिए खुद ही आगे आना होगा। महिलायें किसी भी मायने में किसी से कम नहीं बल्कि सभी गुणों से सम्पन्न हैं। हीन भावना को निकालकर महिलाओं को अपना रास्ता खुद बनाना होगा। राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की महिला संवर्ग के तत्वाधान में हाजीपुर में आयोजित शिक्षिका सम्मेलन में बतौर मुख्य अतिथि उपस्थित सूबे की पूर्व समाज कल्याण मंत्री परवीन अमानुल्लाह ने उक्त बातें कही। सम्मेलन में महिलाओं की भारी तादाद देखकर खुशी का इजहार करते हुए कहा कि महिला शिक्षिकाओं की भारी भीड़ साबित करती है कि महिलायें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। सम्मेलन की विशिष्ट अतिथि लालगंज की विधायक

श्रीमती अन्नू शुक्ला ने शिक्षिकाओं की मांगों का समर्थन किया एवं उनकी पूर्ति के लिए किए जा रहे संघर्ष में अपनी भागीदारी निभाने की बातें कहीं। शिक्षिका सम्मेलन में विविध क्षेत्रों की कई महिला हस्तियाँ मंच पर मौजूद थी जिनमें नगर परिषद हाजीपुर की सभापति श्रीमती रमा निषाद, प्रसिद्ध महिला चिकित्सक डा. सुचिता चैधरी, हाजीपुर विमेंस कॉलेज की प्राचार्या डा. मीरा सिंह, डायट हाजीपुर की प्राचार्या श्रीमती गोपा मुखर्जी, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय सोरहथा की प्राचार्या श्रीमती नूतन सिन्हा, जिला पार्षद श्रीमती धनवंती देवी प्रमुख थी। सम्मेलन में व्यवस्था पर सवाल उठे, सरकार की शिक्षा नीति की आलोचना हुई, शिक्षा एवं शिक्षक हित में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गए तथा शिक्षिकाओं को सुरक्षा एवं सम्मान सुनिश्चित करने पर जोर दिया गया।

हाजीपुर के गाँधी आश्रम स्थित पुस्तकालय भवन में 987 शिक्षिकाओं ने

सम्मेलन में अपनी सहभागिता सुनिश्चित की। महासंघ के प्रा. संवर्ग के प्रदेश अध्यक्ष कृष्णकांत झा ने झंडोतोलन किया। सम्मेलन दो सत्रों में आयोजित था। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता विभा पाण्डेय एवं संचालन उषा सिन्हा ने किया। आगत अतिथियों का स्वागत महासंघ की जिला महिला मंत्री श्रीमती प्रियंका ने किया। आगत अतिथियों को बुके एवं शॉल देकर सम्मानित किया गया। द्वितीय सत्र में महिला शिक्षिकाओं ने कई समस्याओं की चर्चा की तथा उनके समाधान के लिए एकजुट होकर संघर्ष करने की वकालत की। द्वितीय सत्र की अध्यक्षता श्रीमती जयमाला सिंह ने की तथा संचालन श्रीमती रीमा कुमारी ने किया। सम्मेलन में महासंघ के प्राथमिक संवर्ग के प्रदेश महामंत्री पंकज कुमार, जिला ईकाई के कार्यकारी अध्यक्ष आलोक रंजन, जिला सचिव अनिल कुमार पाण्डेय भी उपस्थित थे।



अपने शहर के नामी-गिरामी कॉलेज के हिंदी विभाग के साथियों के सामने एक बार मैंने प्रस्ताव रखा कि मेरे पास देश के प्रतिष्ठित लेखकों की साढ़े तीन सौ पूरी तरह नई पुस्तकें हैं, हिंदी से लेकर समसामयिक विषयों, पत्रकारिता आदि पर। मेरे पास इन्हें रखने की जगह नहीं है और उग्र के इस पड़ाव पर इस पुस्तक-संपदा के मोह से मुक्त होना चाहता हूँ। आपका महाविद्यालय शहर के बीचोबीच है, कभी कोई भी यहां आकर पढ़ सकता है। किसी सार्वजनिक पुस्तकालय को इसलिए नहीं देता हूँ कि बीस-बाईस साल पहले एक पुस्तकालय को कविता-नाटक आदि से संबंधित डेढ़ सौ पुस्तकें दी थी, कुछ वर्ष पहले उनमें से किसी पुस्तक की आवश्यकता हुई तो मेरी दी गई पुस्तकों में से कोई भी वहां नहीं थी।

उदास किताबें

□ पुष्पपाल सिंह

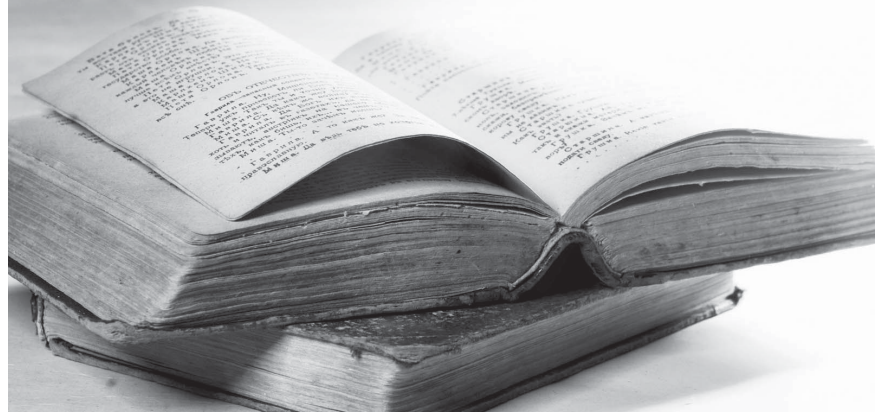
हाल ही में, लखनऊ विश्वविद्यालय के एक हिंदी प्राध्यापक मित्र से बात हो रही थी। मैंने कहा आप अमुक पुस्तक अपने पुस्तकालय में मंगवा कर पढ़ लीजिए। उनका उत्तर था, हमारे पुस्तकालय में हिंदी पुस्तकों के लिए राशि नहीं है। मैंने कहा, ऐसे कैसे हो सकता है, हर साल यूजीसी इतनी भारी राशि पुस्तक खरीद के लिए देती है। उन्होंने बताया कि पूर्व विभागाध्यक्ष ने लगातार दो वर्ष तक पुस्तकों की खरीदी के लिए दी जाने वाली राशि का उपयोग नहीं किया, इसलिए अब वह नहीं मिलती। सब जानते हैं कि मार्च के अंत तक उस वर्ष के लिए दी गई राशि का उपयोग करना पड़ता है, नहीं तो वह निरस्त कर दी जाती है। विभागाध्यक्ष ने इस झंझट से बचने के लिए लिख कर दे दिया कि पुस्तकालय में हिंदी की पर्याप्त पुस्तकें हैं, हमें अब और राशि नहीं चाहिए। कैसी विडंबना है कि विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों के पास सूची बनाने का भी समय नहीं है!

हर साल जगह-जगह पुस्तक मेले आयोजित होते हैं, दिल्ली में विश्व पुस्तक मेला लगता है। क्या हिंदी अध्यापक के लिए इन मेलों की कोई उपादेयता नहीं है? अपने विषय पर प्रकाशित अद्यतन श्रेष्ठ पुस्तकों को विश्वविद्यालय पुस्तकालय में मांगना, उसका नैतिक ही नहीं, वैधानिक दायित्व भी है। यह मिसाल केवल एक विश्वविद्यालय की नहीं है। अधिकतर

कॉलेजों-विश्वविद्यालयों की यही स्थिति है। एक बार अपने पुराने कॉलेज के पुस्तकालय जाना हुआ। लाइब्रेरियन मित्र से पूछा कि अब कितनी अलमारियां हिंदी की हो गई हैं? उनका उत्तर था, 'सर, जितनी अलमारियां और पुस्तकें आप छोड़ गए थे, वही हैं।'

इसका एकमात्र कारण पढ़ाई का बहुत अधिक पाठ्यक्रम-केंद्रित और कुंजी-केंद्रित हो जाना है। कुछ वर्ष पहले एक विश्वविद्यालय की एम. ए. की उत्तर-पुस्तिकाएं जांच रहा था, जिनमें से अधिकतर विद्यार्थियों ने 'गोदान' के रचनाकार का नाम मायावती टंडन लिखा था। 'गोदान' पर जो कुंजी उन्होंने पढ़ी होगी, उसकी लेखिका मायावती टंडन होंगी।

अपने शहर के नामी-गिरामी कॉलेज के हिंदी विभाग के साथियों के सामने एक बार मैंने प्रस्ताव रखा कि मेरे पास देश के प्रतिष्ठित लेखकों की साढ़े तीन सौ पूरी तरह नई पुस्तकें हैं, हिंदी से लेकर समसामयिक विषयों, पत्रकारिता आदि पर। मेरे पास इन्हें रखने की जगह नहीं है और उग्र के इस पड़ाव पर इस पुस्तक-संपदा के मोह से मुक्त होना चाहता हूँ। आपका महाविद्यालय शहर के बीचोबीच है, कभी कोई भी यहां आकर पढ़ सकता है। किसी सार्वजनिक पुस्तकालय को इसलिए नहीं देता हूँ कि बीस-बाईस साल पहले एक पुस्तकालय को कविता-नाटक आदि से संबंधित डेढ़ सौ पुस्तकें दी थी, कुछ वर्ष पहले उनमें से किसी पुस्तक की आवश्यकता हुई तो मेरी दी गई पुस्तकों में से कोई भी वहां नहीं थी। इस प्रस्ताव पर उधर से कोई उत्तर नहीं आया। मेरे दो-एक बार खटखटाने के बाद उत्तर मिला कि 'पहले हम आकर देखेंगे कि कौन-कौन-सी पुस्तकें हमारे विद्यार्थियों



के मतलब की हैं (यानी उनके पाठ्यक्रम से संबंधित हैं)।' यह सोच विद्यार्थियों को केवल परीक्षा की दृष्टि से तैयार करने का है। ऐसे में विद्यार्थी पाठ्यक्रम केंद्रित हो जाते हैं, न उनकी पुस्तकालय में रुचि रहती है, न नए-नए प्रकाशनों के विषय में जानकारी रखने की कोई जिज्ञासा जगती है।

कुछ विश्वविद्यालय विश्व पुस्तक मेले में जाने के लिए अपने यहां से यूनिवर्सिटी बस भेजते हैं, पर केवल अध्यापक वर्ग के लिए। विद्यार्थियों को भी इन पुस्तक मेलों में ले जाने का उपक्रम होना चाहिए। कॉलेजों से भी विद्यार्थी दल पुस्तक मेले में भेजे जा सकते हैं। पर कॉलेजों के 'टूर' का अर्थ केवल मुंबई, गोवा, आदि स्थानों की यात्रा भर रह गया है।

कम से कम एमफिल या पीएचडी का शोध छात्र केवल अपने विषय तक सिमट कर न रह जाए, इसके लिए मैंने विश्वविद्यालय में रहते हुए एक प्रयत्न किया कि शोध छात्रों के लिए हिंदी के श्रेष्ठ ग्रंथों की एक व्यापक सूची बनाई जाए और इनके लिए उनमें से बारह पुस्तकें पढ़ना अनिवार्य कर दिया जाए, जिसमें पाठ्यक्रम से अलग पुस्तकें हों। समिति में इसका बड़ा विरोध हुआ। किसी प्रकार इस निर्णय को लागू कराया गया, पर यह एकाध सत्र भी ठीक से नहीं चल पाया। हिंदी का अध्यापक छात्रों को किस दिशा में डाल और ढाल रहा है, यह चिंता का विषय है। ऐसे में सराहनीय है वह बड़ा जन-समुदाय, जो पुस्तक मेलों में पढ़ने की निष्ठा से आ जुटा है। वे मात्र हिंदी अध्यापन से जुड़े लोग नहीं हैं, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से संबद्ध साहित्य-प्रेमी, पुस्तक-प्रेमी जन हैं। पर कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों में पुस्तक-प्रेम कैसे जगाया जाए इसके लिए आवश्यक है कि सबसे पहले विद्यार्थियों को पुस्तकालय की उपयोगिता से परिचित कराया जाए। हिंदी के छात्रों और अध्यापकों पर दोष लगाया जाता है कि उनका 'आई-क्यू' सीमित है- पुस्तक-प्रेम इससे उन्हें उबार सकता है। अब पुस्तक मेले केवल दिल्ली तक सीमित नहीं रह गए हैं, प्रदेशों की राजधानियों और अन्य बड़े-छोटे नगरों में भी आयोजित होने लगे हैं। कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के हिंदी विभाग अपने बी ए, एम ए के छात्रों को वहां ले जाएं, जिससे उनमें पाठ्यक्रम से इतर पुस्तकें पढ़ने का भी चाव जागे। □

Education index shows growing north-south chasm

Hindi Heartland States Continue To Languish

□ Akshaya Mukul

The annual Education Development Index (EDI) for 2012-13 is out and like previous years the narrative has not changed. There is a civilizational difference between the south and the north as the Hindi heartland states continue to languish at the bottom of the heap.

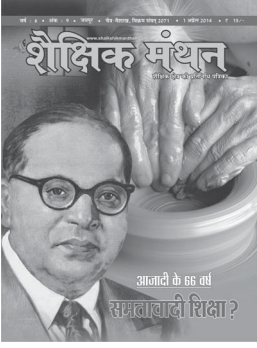
The EDI is also an indicator that while the southern states are improving in leaps and bounds after the enactment of the Right to Education (RTE) Act, states like Bihar, Uttar Pradesh, Rajasthan and others, despite their best efforts, are proving to be no match. States were judged on four parameters: access, infrastructure, teachers and outcomes.

EDI, done by the National University of Educational Planning and Administration on the basis of mammoth District Information of School Education (DISE) data, has ranked Lakshadweep on top after evaluating its primary and upper primary education performance. Puducherry is ranked second, followed by Tamil Nadu, Sikkim and Karnataka.

Tamil Nadu's high ranking also exposes the flawed ranking system that the HRD ministry had adopted in ranking states on the basis of their performance in the Mid Day Meal scheme. The southern state was poorly ranked above 20 and touted as laggard. The state government had protested. One of the parameter used in DISE ranking takes into account infrastructure as an important component like the availability of kitchen sheds. Among the northern states, Punjab has recovered a lot of ground occupying the sixth position, a remarkable recovery from its 13th rank in 2011-12.

Among the southern states the biggest decline has been of Kerala, once among the best performers. It is now languishing at 14th position. In 2011-12 it was ranked seventh. What led to Kerala's overall poor ranking is the loss in primary education. In primary education, the state's rank went down to 20th from sixth in 2011-12. While Delhi has also slipped from sixth to 11th in overall ranking, Maharashtra has shown consistency retaining its eighth position.

As for the perpetual laggards, Bihar has recovered a bit. It is now ranked 30th from 33rd in 2011-12. UP's downward slide continues, from 32nd to 34th. Rajasthan is in the same league: 25th from 23rd position. West Bengal is yet to witness CM Mamata Banerjee's much promised winds of change in school education. The state has slipped to 31st rank from 29th in the previous EDI ranking. MP, likely to give another term to Shivraj Singh Chouhan, is also among the worst performers, occupying 28th slot. □



समाज में बदलाव की लहर तो आई है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। इसके लिए समाज और सरकार के बीच बेहतर तालमेल और समन्वय की आवश्यकता है। क्या हम सब इसके लिए तैयार हैं! हमें एक संयुक्त सोच की ओर अग्रसर होना होगा, जहां स्त्री सशक्तीकरण और उसकी सुरक्षा को प्रमुखता दी जा सकती हो। स्त्री सशक्तीकरण का मुद्दा सिर्फ नेताओं की जुबान पर न हो, बल्कि वे इसके लिए व्यावहारिक रूप से कुछ करते भी दिखाई देने चाहिए। यह इसलिए कि रजवाड़े भले समाप्त हो गए, समाजवाद और जातिवाद का संघर्ष और शायद अपनी पितृसत्ता को कायम रखने के लिए हिंसा भी जारी है। उसी समाज में आज नारी सम्मान और सुरक्षा पर चिंतन-मंथन चल रहा है। यह सब एक सकारात्मक सामाजिक सोच की ओर संकेत दे रहा है।

जागरुकता के बावजूद

□ सय्यद मुबीन ज़ेहरा

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के मौके पर महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर होने वाले चिंतन-मंथन और जागरुकता कार्यक्रमों में जाने का अवसर मिला। ये सभी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि आठ मार्च का दिन सचमुच महिला सशक्तीकरण का प्रतीक बन चुका है। पर इसके साथ-साथ महिला दिवस पर बाजार की लुभाऊ योजनाएं भी नजर आईं। जब इस तरह बाजार और उपभोक्ता मानसिकता को महिला संघर्ष के साथ जुड़ते देखा तो यह विश्वास हो गया कि अब महिलाओं से संबंधित मुद्दे बाजार को भाने लगे हैं। बाजार अब इन मुद्दों को सास-बहू के धारावाहिकों की तरह संचालित करने लगेगा, जहां महिलाओं को केवल सजे-सजाए माहौल में बाजार के प्रसाधनों में घेर कर एक-दूसरे के विरुद्ध साजिशों में उलझा दिखाया जाता है।

ब्यूटी पैकेज, जूतों और साड़ी की सेल, पति के साथ रात्रिभोज पर छूट, सौंदर्य प्रसाधनों आदि से भरे बाजार का महिला दिवस से जुड़ जाना यही जाहिर करता है कि महिला मुद्दे इतने हावी हो चुके हैं कि बाजार को भी उसमें शुद्ध लाभ दिखाई देने लगा है। क्या इसे महिला संघर्ष की सफलता माना जाए, इस पर अभी विचार होना बाकी है। बाजार का तो दस्तूर ही है कि जो

दिखता है वही बिकता है। इसलिए यह विश्वास करना पड़ेगा कि इस समय महिला मुद्दों को लेकर किसी न किसी स्तर पर जागरुकता आ रही है। अब देखना है कि इस जागरुकता को हम किस प्रकार महिला हितों की ओर मोड़ पाने में सफल हो पाते हैं।

महिला संघर्ष और उसकी अस्मिता को सबसे पहले 8 मार्च 1975 को संयुक्त राष्ट्र ने मान्यता दी और यह दिन अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस घोषित हुआ। उसके बाद महिला संघर्ष को एक पहचान तो मिल गई, लेकिन इनकी समस्याओं का समाधान मिल पाया है या नहीं, यह एक प्रमुख सवाल है। यह सवाल मन में आते ही महादेवी वर्मा की वह बात याद आती है कि 'संसार परिवर्तनशील है, यहां बड़े-बड़े साम्राज्य बह गए, संस्कृतियां लुप्त हो गईं, जातियां मिट गईं, रीति-रिवाज बदल गए, रूढ़ियां टूट गईं, सब कुछ बदल गया, पर स्त्रियों की दशा नहीं बदली है।'

महादेवी वर्मा के इस कथन की रोशनी में जब हम महिला सशक्तीकरण और उसकी स्थिति का आकलन करते हैं तो लगता है कि अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। कहीं महिलाओं की ऐसी स्थिति का कारण यह तो नहीं कि विश्व में निर्वाचित प्रतिनिधियों में केवल सत्रह प्रतिशत महिलाएं हैं। हमारे यहां आजकल लोकसभा चुनाव के लिए हर दिन राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों की घोषणा





कर रहे हैं। पर ध्यान दें तो पाते हैं कि महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों के विरुद्ध बढ़-चढ़ कर बोलने वाले दल भी महिला प्रत्याशियों को लेकर इतने गंभीर नहीं हैं, जितना वे महिला मुद्दों पर खुद को गंभीर दिखाने की कोशिश करते हैं।

महिलाओं को या तो उनके रिश्तेदारों की जगह प्रत्याशी बनाया जाता है या फिर ऐसे क्षेत्रों से उम्मीदवार घोषित किया जाता है, जहां उनके लिए जीतना कठिन हो। कोई भी राजनीतिक दल महिलाओं के हित की नीति के तहत ऐसा करता प्रतीत नहीं हो रहा है। जबकि महिला मतदाताओं की संख्या लगभग आधी है। आधी आबादी का वोट भी चाहिए, मगर उसे प्रतिनिधित्व देते हुए घबराहट होती है तो फिर महिला अधिकारों की रक्षा कैसे हो सकती है।

महिलाओं के विरुद्ध हो रही हिंसा और उनसे जुड़े मुद्दों पर होने वाली संगोष्ठियों में इस सप्ताह कई जगह बोलने और दूसरों को सुनने का अवसर मिला। बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल के महिला अध्ययन विभाग द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में महिलाओं और कन्याओं के विरुद्ध हिंसा पर भारतीय और पाश्चात्य संदर्भ में चर्चा हुई। वहां चर्चा करते हुए ऐसा लगा कि शिक्षा का दायरा बढ़ने के बाद महिलाओं के विरुद्ध अपराध में नई श्रेणी जुड़ती जा रही है। एक तरफ तो हम घरेलू हिंसा, बलात्कार और कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न जैसे मसलों पर मजबूत कानून की बात करते हैं। वहीं दूसरी ओर हमारे देश में छह महीने की बच्ची से लेकर पचहत्तर वर्ष की

महिला तक के साथ बलात्कार की घटनाएं होती हैं।

यहीं पर आशा शुक्ल और कुसुम त्रिपाठी की पुस्तक स्त्री संघर्ष के मुद्दों पर चर्चा के दौरान महादेवी वर्मा की बात सामने आती रही। स्त्री संघर्ष का इतिहास सामने आने पर ऐसा लगा कि अपनी बर्बादी का अहसास हो जाने के बाद महिलाओं की स्थिति और दयनीय दिखाई देने लगती है।

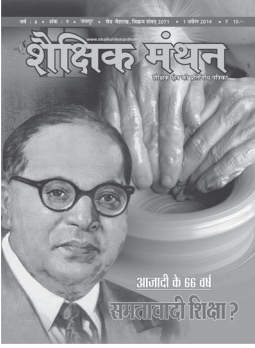
इन सबके बावजूद एक अहसास जरूर है कि महिला मुद्दों को लेकर कुछ चिंतन होने लगा है। अब पुलिस थाने में जाकर महिलाएं अपना दुख बयान कर पा रही हैं। पर क्या ऐसा ग्रामीण और कमजोर महिलाओं के मामले में भी हो पा रहा है? इस प्रश्न का उत्तर शायद हां में न हो। लेकिन एक बात तो है कि पुलिस अब महिला मुद्दों को लेकर जागरूक दिखना चाहती है। जहां-जहां महिलाओं को लेकर जागरूकता बढ़ी है, वहां पुलिस विभाग भी बदलाव की प्रक्रिया से गुजरने लगा है। अब पुलिस विभाग में भी महिलाओं के प्रति खुद को संवेदनशील बनाने की प्रक्रिया को गंभीरता से लिया जाने लगा है। यह बात दिल्ली पुलिस की एक कार्यशाला में बोलते हुए महसूस हुई। वहां 'महिला और पुलिस: एक संवाद' पर चिंतन हुआ।

पुलिस के अफसरों और जवानों से बात करके लगा कि वे महिलाओं के प्रति संवेदनशील होना चाहते हैं। फिर चूक कहां रह जाती है? क्यों वे अपराधी और आम नागरिक के बीच फर्क नहीं कर पाते और सबको एक ही लाठी से हांकने लगते हैं।

कहीं न कहीं हमारे सामाजिक और प्रशासनिक ताने-बाने में ऐसा कोई खोट है, जो हमसे वह करवा लेता है, जिसकी शिक्षा न तो हमारे शास्त्रों ने दी है और न हमारे संस्कारों और मूल्यों में कहीं ऐसा है। इस पर गंभीरता से विचार करके ही हम समाज में महिला अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं।

समाज में बदलाव की लहर तो आई है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। इसके लिए समाज और सरकार के बीच बेहतर तालमेल और समन्वय की आवश्यकता है। क्या हम सब इसके लिए तैयार हैं! हमें एक संयुक्त सोच की ओर अग्रसर होना होगा, जहां स्त्री सशक्तीकरण और उसकी सुरक्षा को प्रमुखता दी जा सकती हो। स्त्री सशक्तीकरण का मुद्दा सिर्फ नेताओं की जुबान पर न हो, बल्कि वे इसके लिए व्यावहारिक रूप से कुछ करते भी दिखाई देने चाहिए। यह इसलिए कि रजवाड़े भले समाप्त हो गए, समाजवाद और जातिवाद का संघर्ष और शायद अपनी पितृसत्ता को कायम रखने के लिए हिंसा भी जारी है। उसी समाज में आज नारी सम्मान और सुरक्षा पर चिंतन-मंथन चल रहा है। यह सब एक सकारात्मक सामाजिक सोच की ओर संकेत दे रहा है।

इस सोच को केवल महिला दिवस तक सीमित रखने के बजाय इसको अपने गंभीर चिंतन का केंद्र बनाने की जरूरत है। क्या आप इस अहसास के साथ महिलाओं के प्रति संवेदनाओं को जोड़ पाएंगे। अगर ऐसा हो पाता है तो फिर महिलाओं के लिए हर दिन महिला दिवस हो जाएगा। □



Indians the second largest community, after Americans, to register for these courses, said edX president Anant Agarwal, an Indian American who grew up in Mangalore and who has been teaching the circuits & electronics course in MIT for 26 years. The courses have been put together and are led by some of the finest professors in the world. Students require just an internet connection. The courses are free, can be normally completed within a duration of 4 weeks to 12 weeks, and those who complete them receive a certificate from the university that provides the course.

Indians No. 2 users of MIT-Harvard e-courses

□ Sujit John

Over 2.5 lakh Indians have registered for courses on edX, the massive open online course (Mooc) platform founded by Massachusetts Institute of Technology (MIT) and Harvard University in May 2012 to host online university-level courses.

This makes Indians the second largest community, after Americans, to register for these courses, said edX president Anant Agarwal, an Indian American who grew up in Mangalore and who has been teaching the circuits & electronics course in MIT for 26 years.

The courses have been put together and are led by some of the finest professors in the world. Students require just an internet connection. The courses are free, can be normally completed within a duration of 4 weeks to 12 weeks, and those who complete them receive a certificate from the university that provides the course.

Some 2 million people from 196 countries have registered for edX courses, of which about 6 lakh are from

the US, about 80,000 each from the UK and Brazil, and about 60,000 from China.

For Indians, the most popular courses have been those related to computer science, engineering, and public health. Globally and for Indians, the two most popular courses are 'Introduction to computer science', led by Harvard faculty David J Malan and Rob Bowden, and the circuits & electronics course led by Agarwal.

"Some 2.2 lakh people are currently registered for the introduction to computer science course, and some 3.6 lakh have registered for this course in the past two years. The circuits & electronics course has had a total of 2.5 lakh students since it started. About 12% of the students in both courses are from India," said Agarwal.

Indians account for about 50% of the 70,000 enrolments in Harvard's public health course. Agarwal said this strong interest from Indians was thanks to the Medical Council of India spreading the word among doctors.

edX, a not-for-profit initiative, and Coursera, a for-profit initiative by two



Stanford professors, are among the biggest Moocs providers. edX now offers some 160 courses including in science, engineering, business, law, history, social sciences, and artificial intelligence. Only around 6% of those who register for these courses actually complete them and go on to receive certificates.

For this and other reasons, Moocs still has a lot of critics. Few think it can completely substitute classroom teaching. The big promise of Moocs is that it can take world-class education to those who are otherwise excluded for socio-economic or geographic reasons. But a recent University of Pennsylvania study revealed that over 80% of surveyed people taking Moocs already hold college degrees.

Agarwal is unfazed by these arguments. Moocs, he says, are better than what you get in many universities, and particularly valuable for countries like India, for students who can't get into the top schools or can't afford them. "Today's generation is also used to watching videos. And our courses give a video game-like experience. So students are very engaged. We are planning a big push in India," he said.

He also noted instances of students benefiting from these courses. "One US student who took our software-as-a-service course added that to his LinkedIn profile and received a job interview call from a company in New York the very next day. Amol Bhawe, a high school student in Jabalpur, took my course in circuits & electronics. He applied to MIT soon after and got in with financial aid," Agarwal said. □

CCE sails through first Class XII test

□ Anubhuti Vishnoi

The first ever analysis of how students have performed in Class XII boards after the Continuous and Comprehensive Evaluation (CCE) format came into effect across CBSE schools shows that students who chose to skip the 2011 board exams have, in their 2013 Class XII boards, outperformed those who appeared for boards in Class X.

A CCE report released by the Central Board of Secondary Education (CBSE) on four years of implementation of the novel evaluation methodology says that "students who skipped the board's Class X exams have done better both in terms of high marks and mean marks".

The CCE was introduced in 2009 and, in 2011, CBSE that is followed by over 10,000 schools across the country made Class X board exams optional in a bid to decrease stress levels among students and to usher in a more rounded evaluation technique. Many protested, arguing that this would relax academic rigour in the school system.

As the CBSE report notes, the data will put to rest fears of parents, teachers and other stakeholders about the CCE system, as the first batch of students to miss out on Class X boards had not just scored high in their first public exam but also increased the pass rate by more than 2 per cent.

The report shows that the pass

percentage in Class X board exams of 2013 was 98.76 per cent, a big jump from the 88.84 per cent figure in 2009 (when the CCE was not in force).

The bigger story lies in the Class XII board exam figures. In 2013, as many as 19.44 per cent of the students who had opted for school-based exams instead of boards in their Class X scored over 80 per cent in Class XII. In contrast, 17.40 per cent of the students who had taken Class X boards could score over 80 per cent.

On the other end of the spectrum, while 8.43 per cent students who had opted for boards in Class X scored less than 40 per cent in Class XII, the figure was 6.84 per cent for those who skipped the boards.

The overall pass percentage in Class XII Boards also rose, from 82 per cent in 2012 to 84 per cent in 2013.

CBSE Chairman Vineet Joshi said that apart from the improvement in overall performance, data showed that CCE was also clearly helping lower stress levels among students.

"While the CBSE helpline clocked in over 3,000 distress calls earlier, this year that figure is down to just 50-60. Our teacher surveys have also shown that 96 per cent of them have faith in the CCE system. A survey commissioned to MDI Gurgaon capturing views of all stakeholders teachers, students, parents and academicians too indicates a strong feeling that doing away with boards has been helpful and less stressful," Joshi said. □





पढ़ाई तब और अब

□ कमल कौशिक

सरकार के करोड़ों रुपए खर्च होते हैं। गरीब बच्चों का कीमती वक्त जाया होता है। मां-बाप मजदूरी करके बच्चों को पढ़ने भेजते हैं। उनकी इच्छा होती है कि हम नहीं पढ़ पाए तो क्या, हमारे बच्चे कुछ पढ़-लिख जाएं। लेकिन जिनके हाथ में बच्चों का भविष्य है, उन्हें इस बात की कोई परवाह नहीं। जापान में 1872 में यह नियम लागू हुआ था कि किसी भी समुदाय और परिवार का कोई भी सदस्य निरक्षर नहीं रहेगा। वहां इस नियम का शत-प्रतिशत पालन हुआ। फिर जापान दुनिया में सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे देशों में शुमार होने लगा। लेकिन हमारे देश में ऊपर से नीचे तक अव्यवस्था और लापरवाही का आलम है।

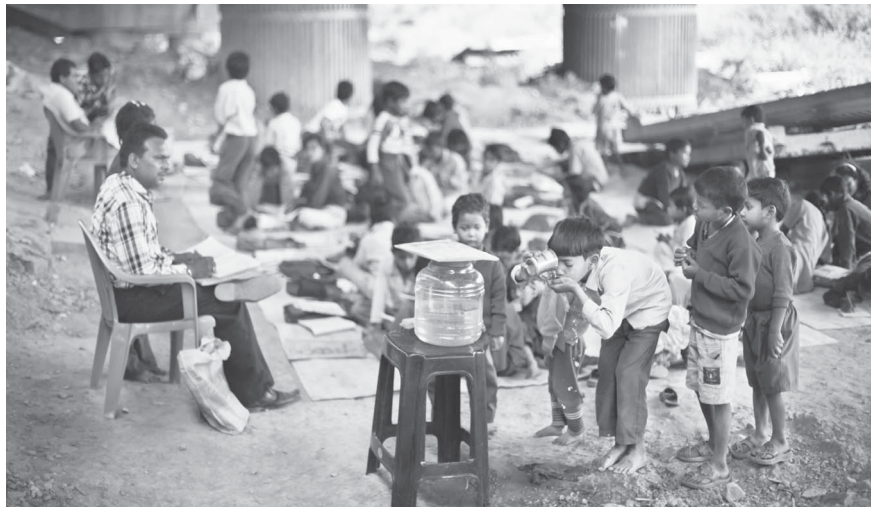
अपनी जिंदगी के बयालीसवें साल में चल रही हूं। मेरे स्कूल में पढ़ने के दौर में प्रशिक्षित अध्यापिका नहीं होती थी। लेकिन जो अध्यापक होते थे, अपना काम काफी मेहनत और ईमानदारी से करते थे। करीब सत्तर साल पहले जब मैंने प्राथमिक कक्षा पास की थी तो उस समय नवाब की रियासत में हमारी मंडी एक छोटा-सा कस्बा थी। वहां स्कूल को आगे बढ़ाने के लिए छठी कक्षा शुरू की गई, जिसमें तब केवल दो बच्चियां पढ़ती थीं। एक की शादी हो गई, दूसरी के लिए सातवीं कक्षा नहीं चली। उन दिनों लाहौर के पंजाब विश्वविद्यालय में लड़कियों के लिए 'रत्न', 'भूषण' और 'प्रभाकर'—तीन परीक्षाओं की व्यवस्था थी। रत्न का स्तर हिंदी की दसवीं, भूषण का बारहवीं और प्रभाकर का स्नातक स्तर केवल हिंदी का होता था। किसी को स्नातक पूरा करना होता था तो अलग से बाकी विषय लेने पड़ते थे।

बहरहाल, छठी कक्षा के बाद सातवीं नहीं चली, तब भी सक्रिय कार्यकर्ताओं ने हार नहीं मानी। उन्होंने अपने स्कूल में 'रत्न' की पढ़ाई शुरू कर दी। हिंदी रत्न के लिए बहावलपुर से हिंदी भूषण की डिग्री ली हुई एक अध्यापिका को वहां बुलाया गया। मंडी चिशितया, नई मंडी बनी थी, इसलिए वहां रोजगार के लिए कुछ पंजाबी परिवार भी आ गए थे। उनकी बच्चियों का भी

उन्होंने हिंदी रत्न में दाखिला करवा दिया। रत्न की परीक्षा देने के लिए रियासत की राजधानी बहावलपुर जाना पड़ता था। उस समय जितना अनुशासन होता था, उतना आज आइएएस की परीक्षा में भी नहीं होता होगा। हमारी अध्यापिका ने हमें समझाया कि आपकी टेबल पर जरा-सी भी आवाज आई तो आप तीन साल के लिए निकाल दी जाएंगी।

हम पांच लड़कियां परीक्षा देने गईं। बाकी चार लड़कियां मुझसे बड़ी थीं और उन्होंने कुछ ज्यादा पढ़ाई की थी। मैं ग्यारह साल की थी और उसी वर्ष मैंने पांचवीं पास की थी। तब पांचवीं छह वर्ष में होती थी—कच्ची, पक्की, दूसरी, तीसरी, चौथी और पांचवीं! लेकिन मेरे पिताजी ने पांचवीं के बाद दसवीं के स्तर पर रत्न का परीक्षा फार्म भर दिया। कहा—'मेरी बेटी अभी छोटी है, इस बार वहां का वातावरण देख आएंगी कि वहां कितने अनुशासन से चुपचाप बैठना होता है। अगले वर्ष तैयारी करके परीक्षा दे आएंगी।'

खैर, बाकी लड़कियों के साथ मैं भी पास हो गई। सारा स्कूल प्रसन्न था कि हमारा शत-प्रतिशत परिणाम आया है। मेरे पिताजी की खुशी का ठिकाना नहीं था कि मेरी इतनी छोटी बच्ची दसवीं के स्तर की परीक्षा पास कर गई। उन्होंने मेरी अध्यापिका के पास इस खुशी में एक सूट, यानी सलवार-कमीज भिजवाया कि पांच-पांच वर्षों से घर में बैठी हुई सब बच्चियां पास कर गईं



हैं। वो अध्यापिका विधवा थीं और दो बेटों को खुद ही पाल रही थीं। लेकिन उन्होंने वह सूट लेने से इनकार कर दिया।

यह थी उस समय की शिक्षा की गुणवत्ता, कि पांचवीं कक्षा का बच्चा दसवीं के स्तर की परीक्षा पास कर गया। और आज की गुणवत्ता देखिए कि पांचवीं का बच्चा दूसरी कक्षा की किताबें भी ठीक से नहीं पढ़ पाता। गैर-सरकारी संगठन 'प्रथम' की वार्षिक रिपोर्ट इस शोचनीय हालत का आईना है। यूनेस्को की ग्यारहवीं वैश्विक निगरानी रिपोर्ट में जो तस्वीर उभरी, उसमें सरकारों का रवैया बड़ा ही उपेक्षापूर्ण और लापरवाही से भरा हुआ है। जाहिर है, सरकार के इस रवैए की मार सबसे ज्यादा गरीब और वंचित तबकों पर ही पड़ती है।

इस प्रवृत्ति के बचाव में हर बार अलग-अलग बहाने बनाए जाते हैं। कभी कहा जाता है कि प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी है, कभी बुनियादी सुविधाओं का रोना रोया जाता है। हालत यह है कि बिहार में अड़तीस और झारखंड में बयालीस प्रतिशत शिक्षक किसी न किसी बहाने गैरहाजिर रहते हैं। दिल्ली में भी स्कूलों में अपना वक्त देने के बजाय बहुत सारे ऐसे शिक्षक हैं जो अपने कारोबार में लगे रहते हैं। निरीक्षक आते हैं, लेकिन जांच का दिखावा करके चले जाते हैं। पढ़ाई में बच्चों की क्या स्थिति है, यह देखना किसी को जरूरी नहीं लगता। केवल उपस्थिति के आधार पर पास कर दिया जाता है, भले ही उस बच्चे को वर्णमाला का एक अक्षर न आता हो।

सरकार के करोड़ों रुपए खर्च होते हैं। गरीब बच्चों का कीमती वक्त जाया होता है। मां-बाप मजदूरी करके बच्चों को पढ़ने भेजते हैं। उनकी इच्छा होती है कि हम नहीं पढ़ पाए तो क्या, हमारे बच्चे कुछ पढ़-लिख जाएं। लेकिन जिनके हाथ में बच्चों का भविष्य है, उन्हें इस बात की कोई परवाह नहीं। जापान में 1872 में यह नियम लागू हुआ था कि किसी भी समुदाय और परिवार का कोई भी सदस्य निरक्षर नहीं रहेगा। वहां इस नियम का शत-प्रतिशत पालन हुआ। फिर जापान दुनिया में सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे देशों में शुमार होने लगा। लेकिन हमारे देश में ऊपर से नीचे तक अव्यवस्था और लापरवाही का आलम है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि बच्चों का भविष्य अगर सुधर जाए तो देश अपने आप सुधर जाएगा। □

98% of aspirants fail test for teachers in India

□ Manash Pratim Gohain



Questions over the quality of teacher training in the country continue with more than 98% of aspiring school teachers failing to clear the Central Teacher Eligibility Test (CTET) 2014. Just 13,428 of 7.50 lakh aspirants passed the test, conducted in January by the Central Board of Secondary

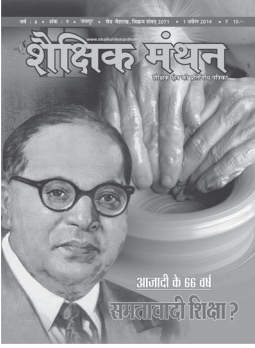
Education (CBSE).

In all, 8.26 lakh aspirants registered for the test. About 7.50 lakh finally appeared for the test, of which only 13,428 managed to clear either Paper I or II or both. Clearing Paper I is mandatory for those wishing to teach classes I to V while Paper 2 is for those wishing to teach classes VI to VIII. Aspirants who wish to get certified for classes I to VIII need to clear both the papers.

The papers feature objective questions which test the aspirants' knowledge of English, mathematics and environmental science. This year's results actually mark a marginal improvement over last year, when over 99% of the candidates failed to pass. But CBSE sources said the board had worked on the difficulty level as well as extended the duration of the test, keeping in mind dismal results in the past.

The CTET was introduced in 2011 by the human resource development ministry to improve the quality of teaching in schools after the enactment of the Right to Education Act. CTET certification has been made mandatory to become a teacher for classes I to VIII in any central government school, while CBSE-affiliated schools can either recruit teachers based on CTET or the respective test conducted by states.

In fact, the Delhi government too decided to adopt CTET for recruitment of teachers for government-run and aided schools. All CTET applicants need to be BEd graduates. □



Aser over the past four years has highlighted this very fact. But in our conversations with education departments in several states, we find many of them are only beginning to shift their focus to learning outcomes. While a few states are experimenting with new and innovative policies aimed at improving learning, there is very little consensus on interventions that are scalable and proven effective at improving learning in primary schools. Do we really know so little?

Instructions based on learning of Child more Important than Syllabus

□ Iqbal Dhaliwal

The recently released Annual Status of Education Report (Aser) 2013, which covers every rural district in India, contains some good but mostly bad news. Enrolment in India's primary schools is still at an impressive 96%, and the number of schools compliant with the Right to Education (RTE) Act norms, such as providing drinking water and usable toilets, continues to rise. But much of this is undermined by a fundamental challenge faced by public and private schools alike. Learning levels are unacceptably low and have been stagnant or getting worse over the past few years, especially in government schools. In basic reading and numeracy skills, the majority of our schoolchildren are falling several years behind where they should be based on their ages and the classes they attend. Although we have schools that are open and children that attend, many of these schools are failing in their basic mission of teaching.

In some ways, this isn't new. Aser over the past four years has highlighted this very fact. But in our conversations with education departments in several states, we find many of them are only beginning to shift their focus to learning outcomes. While a few states are experimenting with new and innovative policies aimed at improving learning, there is very little consensus on interventions that are scalable and proven effective at improving learning in primary schools. Do we really know so little? Do we need to be at the mercy of our instincts, ideology or inertia, or can we do better and use rigorous evidence from the field to accelerate the process of learning for millions of children?

Researchers affiliated with MIT's Abdul Latif Jameel Poverty Action Lab

(J-PAL) have launched over a hundred rigorous randomised impact evaluations in the field to test what works, and what does not, in improving education. Many of these studies were conducted in India with various implementing partners, including state governments such as Haryana and NGOs such as Pratham. One of the clear lessons from this body of research is that teaching at the right level classroom instruction based on the actual learning level of the child, rather than what the government-prescribed syllabus for that class may be is consistently successful in improving student achievement.

Evidence for the teaching at the right level approach has been building up for over a decade. An early illustration of this approach was Pratham's Balsakhi programme, implemented in Mumbai and Vadodara in municipal primary schools in 2001-03. Pratham mobilised local youth, often women, to work with children identified by the school as having fallen behind. These 'balsakhis' held two-hour pull-out classes in the school, using a teaching-learning package designed by Pratham, to teach core skills in literacy and numeracy starting from the current level of the children. An evaluation by J-PAL affiliated researchers found that the programme raised test scores in language and mathematics, with the largest gains going to lower-achieving students.

Subsequently, J-PAL affiliated researchers have rigorously evaluated several variations of this approach in different contexts. In Uttar Pradesh, an evaluation showed that this method can be implemented successfully by community volunteers. In Bihar, Pratham worked with government teachers to use the same methods and materials during school hours and in summer camps. The model worked during the camps but not during school hours, suggesting that

government teachers can deliver learning gains with this approach when they are not under pressure to complete the defined curriculum and are instead given time to focus on specific learning goals. Variations on the teaching at the right level approach have also been adopted in Kenya and Ghana and have been found effective by randomised evaluations.

Perhaps most exciting of all, new results from a pilot programme implemented by the government of Haryana during the 2012-13 academic year show that significant learning gains can be achieved by applying the teaching at the right level approach through regular government teachers during school hours. Pratham trained cluster-level education officers in this teaching methodology, who in turn trained their teachers. For one hour each school day, teachers regrouped the students by their current reading levels, rather than by their age, and taught them with level-appropriate materials. The cluster-level education officers and Pratham staff also provided training, mentoring and monitoring support to teachers throughout the year. A randomised evaluation conducted by J-PAL found significantly higher scores in basic oral and written Hindi after one school year.

Haryana's experience shows



that state governments in India can improve learning outcomes by taking this proven model to scale, rather than continuing with some of the current, failing approaches. Governments can partner with organisations like Pratham, which can provide innovative teaching materials, training, and technical assistance, that contribute to the success of these programmes. In fact, some state governments such as Maharashtra, Madhya Pradesh and Bihar have begun taking some of these ideas to scale.

For the first time, the 12th Five Year Plan strongly emphasises 'improving learning outcomes at all levels' and talks of the need to design specialised programmes to

achieve this goal and to evaluate such interventions. This is a great start, but too much is at stake here for governments and policy-makers to ignore what we already know works and start from scratch. Teaching at the right level works and has been validated through rigorous scientific research in multiple settings a rare feat for any education intervention. Hopefully, when the next Aser is released a year from now, we will report that more education departments are addressing the problem by designing programmes based on hard evidence. □

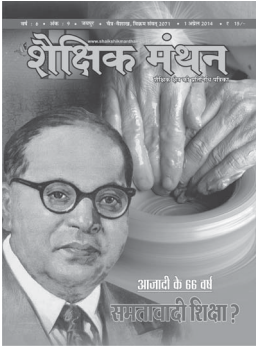
(Shawn Powers is the education program manager for J-PAL, and Jasmine Shah is the head of policy outreach)

35th Annual Conference of Desheeya Adhyapaka Parishath, Kerala

The Thirtyfifth annual conference of the Parishath was held on 6th,7, and 8th of Feb; 2014 at Kayamkulam town Hall in Alapuzha district. The meeting was inaugurated by Manya P.Parameshwaran, Director of Bharatheeya Vichara kendram. Parameshwarji said that Swami Vivekananda was the great eye-opener for us by giving us the most perfect definition for education that education is the manifestation of the divinity already in man. Swamiji was the greatest leader of the 19th century Bharath, who urged us to give proper education to women and the poor section of our society. He was also the prime inspirator for the Indians to garner strength to wipe out

the British rule in India. On these two aspects the present-day teachers and the students have a responsibility to build up good education system in our country.

The Delegate session was inaugurated by the Prantha Karyavah ,Sree Gopalankutty master , and the cultural session was inaugurated by The famous spiritual leader Prof: Thuravur Vishwambaran He elaborated the Bharatheeya Education system and Dharma. The educational session was presided over by the Vice Chancellor of the fisheries University ,Dr. Madhusudana Kurup. By the evening there was a grand procession and a public meeting in the Kayamkulam town.



The squeeze on spending is evident from comparing revised estimates for 2013-14 with the budget estimates. While budget estimates are the proposed spending decided at the beginning of the financial year through the Budget, revised estimates denote a rough tally of how much was actually spent. The final tally of actual spending takes another year to pin down. So, this year's interim budget for 2014-15 gives revised estimates for spending on various heads in 2013-14.

PC squeezes poor to balance books

□ Subodh Varma

Over Rs 31,000cr were slashed from crucial spending on flagship schemes and other welfare programmes in the year that is just ending, according to an analysis of the interim budget presented in Lok Sabha. Many believe this was done to cut the fiscal deficit from 4.8% to 4.6%. The wisdom of such squeezing of the poor on the eve of elections has left poll pundits puzzled.

As reported in December last year, rural development minister Jairam Ramesh had strongly protested against finance ministry pressure to slow down spending on social sector schemes, calling such cuts “completely unreasonable” and “savage” and “demoralizing” in a letter to the PM. However, it looks as if finance minister P Chidambaram has had his way.

The squeeze on spending is evident from comparing revised estimates for 2013-14 with the budget estimates. While budget estimates are the proposed spending decided at the beginning of the financial year through the Budget, revised estimates denote a rough tally of how much was actually spent. The final tally of actual spending takes another year to pin down. So, this year's interim budget for 2014-15 gives revised estimates for spending on various heads in 2013-14.

Several important functions of the government like delivery of health services, education, rural roads, rural housing, drinking water and sanitation have all suffered compression of spending. This will have a direct impact on lives of rural people. In addition several other programmes like midday meals for schools, nutrition for children and pregnant mothers through the ICDS, rural livelihoods and the Rashtriya Krishi Vikas Yojana for enhancing agriculture productivity have been scaled down. Specific

POOR BECOME SOFT TARGETS

Figures in ₹ cr, amounts rounded off. Source: Budget 2014-15

Programs/ Schemes	Affected people	Budget 2013-2014	Revised 2013-2014	Cuts
Midday Meals	School Children	7,976	7,111	865
Primary Education (SSA)	School children	16,453	15,869	584
Secondary Education (RMSA)	School children	3,647	2,855	791
National Health Mission	Rural poor	18,880	16,395	2,484
Rural Drinking Water Programme	Rural poor	9,900	8,730	1,170
Sanitation (Nirmal Bharat Abhiyan)	Rural poor	3,834	2,070	1,764
Rashtriya Krishi Vikas Yojana	Farmers	9,954	7,089	2,865
MSDP for Minorities	Minorities	1,110	842	268
ICDS	Infants/preg women	16,098	14,768	1,290
National Mission for Empowerment of Women	Women	738	347	391
Irrigation (AIBP)	Smaller farmers	12,962	6,162	6,800
JNNURM	Urban poor	14,000	10,000	4,000
Aajeevika	Rural poor	3,659	2,372	1,287
Special Central Assistance to SCSP	Dalits	1,030	783	247
Rural Roads	Rural population	15,690	8,685	7,006
TOTAL		₹1,04,080 cr	₹73,812 cr	Cuts

programmes for empowerment of women and support to dalits too have suffered cuts.

Total Plan Expenditure in 2013-14 had been projected last year as Rs 5.55 lakh crore in Budget Estimates but it stands slashed to Rs 4.75 lakh crore in revised estimates says Subrat Das, director of the New Delhi based thinktank Centre for Budget and Governance Accountability.

“For 2013-14, the Budget Estimate for the department of rural development had been pegged at Rs 74,478 crore but it has been slashed to Rs 59,356 crore in revised estimate. Similarly, the budget estimate for the department of health and family welfare was Rs 33,278 crore but it has been slashed to Rs 27,531 crore in revised estimate,” Das said.

It is often argued that states are unable to spend and so funds cannot be released from the Centre. But there is no reason why 2013-14 should see a contraction in state spending compared to the previous year, argues Das. “2013-14 was not a year which saw major natural calamities or national elections which diverts personnel and typically leads to less expenditure,” he explained.

So, it all boils down to squeezing the poor in order to stick to the fiscal deficit ‘red line’ and keep ratings agencies happy. □

‘शाश्वत जीवन मूल्य’ विषय पर जयपुर में संगोष्ठी सम्पन्न

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा 2 मार्च 2014 को शाश्वत जीवन मूल्य विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि मा. गुलाब चन्द कटारिया, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज मंत्री राजस्थान सरकार, मुख्य वक्ता बजरंग लाल गुप्त (अखिल भारतीय कार्यकारिणी सदस्य-राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ), अध्यक्षता अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल तथा महामंत्री प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल ने माँ सरस्वती के समक्ष दीप प्रज्वलन कर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। इस अवसर पर अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के प्रकाशन की श्रृंखला में तीन पुस्तकों का विमोचन भी किया गया। जिनमें - ‘शिक्षा: दृष्टिकोण और दिशा’ - प्रो. के. नरहरि, ‘अद्वैत की वैज्ञानिकता और स्वामी विवेकानन्द’ - श्री विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी, ‘शाश्वत जीवन मूल्य’ - श्री हनुमान सिंह राठौड़।

भारती भवन के सभागार में मुख्य अतिथि कटारिया जी ने बताया कि ‘वर्तमान परिदृश्य में शाश्वत जीवन मूल्यों की नितान्त आवश्यकता है। बिना जीवन मूल्यों के समाज चल नहीं सकता, जीवन मूल्य कभी बदलते नहीं हैं सदैव शाश्वत ही रहते हैं तथा जीवन मूल्य किसी को किताबी ज्ञान द्वारा नहीं दिये जा सकते अपितु स्वयं के जीवन में उतारने पर ही दूसरों को दिये जा सकते हैं। आज शिक्षा केवल बौद्धिक आदान, प्रदान करने की वस्तु हो गई है जिसमें जीवन मूल्य गोन हो गये हैं। अब सभी को मिलकर

पुनः जीवन मूल्यों को स्थापित करना होगा।

मुख्य वक्ता डॉ. बजरंग लाल गुप्त जी ने बताया कि व्यक्ति की सृष्टि के प्रति जीवन दृष्टि कैसी है उसी से जीवन मूल्य निकलते हैं। उन्होंने अनेक उदाहरणों से शाश्वत जीवन मूल्यों पर प्रकाश डालते हुए बताया कि प्रवाह की दृष्टि से जीवन मूल्य, जीवन दृष्टि सम्पूर्ण चराचर जगत में एक ही तत्व विद्यमान है। उन्होंने अमेरिका की संस्कृति की भारतीय संस्कृति से तुलना करते हुए बताया कि भारतीय संस्कृति हर तरह से समृद्ध एवं महान है। पर्यावरण समस्या गलत जीवन दर्शन से खड़ी हो गई है हम प्रकृति को अपने स्वार्थ के लिए अंधाधुन्ध शोषण एवं दोहन कर रहे हैं। भारतीय जीवन दर्शन में प्रकृति को माँ कहकर पूजा की गई है। वहीं मनुष्य की दृष्टि सकारात्मक होनी चाहिए।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल ने कहा कि भारतीय समाज सदा सर्वदा सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित जीवन धारा पर चलता आया है। सम्पूर्ण संसार आज इसी बात को लेकर इसका सम्यक अभ्यास कर रहा है और समझने का प्रयास कर रहा है कि वे कौन-कौन से तत्व हैं? जो जीवन को जीने से प्रसन्न करते हैं, सन्तुष्ट करते हैं, सुखमय करते हैं, उल्लासित करते हैं। प्रेम पूर्वक, आनन्द से व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं। परस्परवालोंबिता के आधार पर अनुपूरक रहकर कार्य करने के लिए उत्साहित करते हैं। उन्होंने बताया

कि यह संगठन वर्तमान में 23 राज्यों में चल रहा है और धीरे-धीरे पूरे देश में इसका विस्तार किया जाएगा।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के महामंत्री प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल ने बताया कि आज जीवन मूल्यों का क्षरण से हमारे सामने जो समस्या पैदा हुई है उसे हम शिक्षक पूरे देश में एक अभियान चलाकर पुनः स्थापित करने का प्रयास करेंगे। साहित्य की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होगी जिससे हमारे शिक्षक, विद्यार्थी इनसे जुड़कर लाभान्वित होंगे। प्रथम वर्ष में जिला स्तर पर अभियान चलाया जायगा फिर धीरे-धीरे पूरे देश में यह संगठन जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए कार्य करेगा।

कार्यक्रम में अ.भा.रा. शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री महेन्द्र कपूर, माध्यमिक क्षेत्र के राष्ट्रीय संयुक्त सचिव मोहन पुरोहित, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के क्षेत्रीय सम्पर्क प्रमुख राजेन्द्र कुमार, सह क्षेत्रीय सम्पर्क प्रमुख प्रकाश चन्द्र, जयपुर प्रान्त के सह संघचालक डॉ. रमेश चन्द अग्रवाल, प्रान्त प्रचारक शिव लहरी, सह प्रान्त प्रचारक निम्बाराम, पाथेय कण पाक्षिक के प्रबन्ध सम्पादक माणकचन्द माहेश्वरी, शिक्षक संगठनों के प्रमुख पदाधिकारियों सहित बड़ी संख्या में शिक्षक उपस्थित थे।

प्रो. संतोष पाण्डेय ने तीनों पुस्तकों की महत्ता पर प्रकाश डाला एवं बजरंग प्रसाद मजेजी ने सभी का धन्यवाद ज्ञापन किया। कार्यक्रम का संचालन भरत शर्मा, संयोजन बसन्त जिन्दल, नौरंग सहाय, डॉ. योगेश गुप्ता एवं डॉ. रामनिवास चौधरी ने किया।

रुक्टा (राष्ट्रीय) अजमेर द्वारा वर्ष प्रतिपदा पर संगोष्ठी आयोजित

जब तक हम अपनी जड़ों को नहीं जानेंगे, भारत स्वाभिमान से खड़ा नहीं हो सकता है। भारत की कालगणना सृष्टि के प्रारम्भ से शुरू होती है, हमने विश्व को समय मापना सिखाया है, यह हमें जानना होगा। यह उद्गार शिक्षाविद् डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल ने रुक्टा (रा.) द्वारा राजकीय महाविद्यालय, अजमेर में 'भारतीय कालगणना का महत्व' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए व्यक्त किये।

डॉ. अग्रवाल ने भारतीय कालगणना के इतिहास को रेखांकित करते हुए कहा कि आज नासा के वैज्ञानिकों ने भी माना है कि भारतीय पंचांग के अनुसार पृथ्वी की आयु ठीक वही आती है, जो आधुनिक विज्ञान शोध से प्राप्त हुई है। उन्होंने कहा कि भारतीय

कालगणना पूर्णतः पंथ निरपेक्ष एवं प्रकृति के साथ समन्वय रखने वाली है। पंचांग के सभी महीनों के नाम नक्षत्रों के अनुसार रखे गये हैं जो खगोल शास्त्रीय सिद्धांतों पर आधारित है। नवसंवत्सर के साथ राष्ट्रीय गौरव को पुष्ट करने वाली कई घटनाएं जुड़ी हैं, जिनमें बह्मा द्वारा सृष्टि का निर्माण, भगवान राम एवं युधिष्ठिर का राज्याभिषेक, भगवान झूलेलाल का जन्मदिन, विक्रमादित्य द्वारा शकों पर विजय, आर्य समाज की स्थापना। इसके अतिरिक्त प्रकृति में भी बसंत के आगमन के साथ नवसंवत्सर पर उल्लास दिखाई देता है।

कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि इतिहासविद् डॉ. नवल किशोर उपाध्याय ने कहा कि भारतीय कालगणना में चन्द्र,

सूर्य, नक्षत्र एवं आकाशगंगाओं की गति को शामिल किया गया है। उन्होंने कहा कि अजमेर की स्थापना भी नवसंवत्सर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन ही हुई थी, यह हमारे लिये गौरव की बात है। उन्होंने आह्वान किया कि हम अपने सभी वार, त्यौहार, मुहूर्त आदि भारतीय पंचांग से ही मनाते हैं, तो नव वर्ष क्यों नहीं ?

रुक्टा (रा.) के अध्यक्ष एवं महाविद्यालय प्राचार्य डॉ. मधुर मोहन रंगा ने कहा कि हमारे यहां पर काल को चक्र रूप में माना है रेखिक नहीं। अतः सृजन और प्रलय का चक्र दिन व रात्रि की भांति चलता रहा है। रुक्टा (रा.) के महामंत्री डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने विषय की प्रस्तावना रखी। कार्यक्रम का संचालन इकाई सचिव डॉ. सुशील कुमार बिस्सु ने किया।

रुक्टा (रा.) कोटा इकाई द्वारा कालगणना पर संगोष्ठी सम्पन्न

भारतीय नव वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा विक्रम संवत् 2071 युगाब्द 5116 के अवसर पर राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय कोटा की रुक्टा (राष्ट्रीय) इकाई द्वारा नववर्ष समारोह आयोजित किया गया। कार्यक्रम के प्रारम्भ में कार्यक्रम के मुख्य वक्ता माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान के पूर्व अध्यक्ष एवं अखिल एवं अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल का माल्यार्पण एवं पुष्पगुच्छ से स्वागत किया।

कार्यक्रम में उद्बोधन देते हुए डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल ने कालगणना के वैज्ञानिक चिन्तन पर प्रकाश डाला। डॉ. अग्रवाल ने कहा कि जो समाज अपने गरिमामयी अतीत का विस्मरण कर देता है वह समाज चिरस्थाई नहीं रह सकता है।

महर्षि दयानन्द द्वारा आर्यसमाज की स्थापना, सन्त झूलेलाल का जन्म, भगवान राम का राज्याभिषेक इस दिन को महत्वपूर्ण बनाते हैं। कार्य गणना के आधारभूत आकाशीय पिण्ड सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, राशि की गतियों का सम्बंध विक्रम संवत् से है। प्रतिमाह एक सक्रांति होती है जिसका सम्बंध जीवन के सत्कर्मों के प्रेरक प्रकाश से है। सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण का पूर्व ज्ञान तथा आकाशीय घटनाओं का ज्ञान एक मात्र भारतीय काल गणना से है। भारतीय ऋषियों का ज्ञान पूर्णतः वैज्ञानिक था, जिसमें अधिक मास, क्षय मास, कल्प, मन्वन्तर, युग, चतुर्युग आदि इसके परिचायक हैं।

डॉ. अग्रवाल ने कोटा की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं से आये शिक्षकों से आह्वान किया कि वे भारतीय वांग्मय का अध्ययन

करते हुए उसे शोध का विषय बनाये तथा उसमें छिपी वैज्ञानिकता को जीवनोपयोगी बनाये।

कार्यक्रम में प्राचार्य डॉ. अर्चना कुलश्रेष्ठ, रुक्टा (रा.) के पूर्व सहसचिव डॉ. एम.एल. साहू, पूर्व क्षेत्रीय अध्यक्ष ओ.पी.गर्ग, पूर्व क्षेत्रीय अध्यक्ष डॉ. अशोक गुप्ता, क्षेत्रीय सहसचिव गीताराम शर्मा, क्षेत्रीय महिला प्रतिनिधि डॉ. मीनू माहेश्वरी, कोटा विश्वविद्यालय के प्रो. एस.सी. राजोरा, जे.डी.बी. के एम.एल.गुप्ता, राजकीय महाविद्यालय के डॉ. जे.पी.चौधरी एवं सहायक निदेशक एस.एन.गर्ग तथा प्रमुख शिक्षक कार्यकर्ता उपस्थित थे।

कार्यक्रम के अन्त में डॉ. मंजुला त्यागी ने धन्यवाद ज्ञापित किया एवं कार्यक्रम का संचालन डॉ. अशोक गुप्ता ने किया।